Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

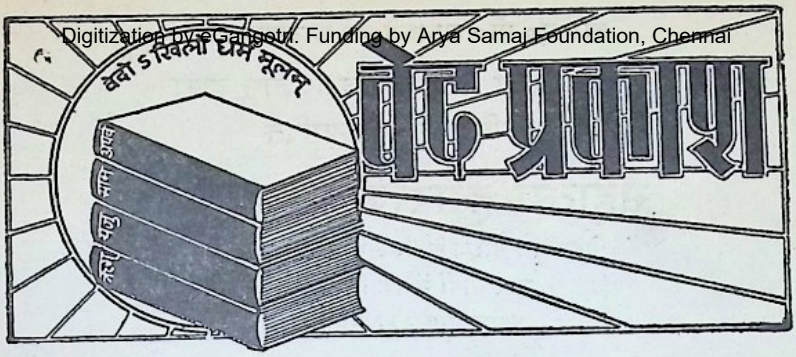

सम्मतियाँ

श्रीमन्नमस्ते,

आपने जो 'वेदप्रकाश' मासिक पत्र का ३५वें वर्ष का १२वाँ अंक भेजा है तदर्थ मुहुर्मुहुः धन्यवाद है। उसके वार्षिक मूल्य के दश रुपये तथा हंसराज ग्रन्थावली के १५० रुपये मात्र धनादेश द्वारा भेज दिए गये हैं।

प्रसन्नता की बात है कि उसका आगामी अंक वेद-ज्योति विशेषांक के रूप में प्रकाशित हो रहा है। 'वेदप्रकाश' द्वारा आप वैदिक साहित्य की सराहनीय सेवा कर रहे हैं।

मैं अपने जीवन में सर्वप्रथम 'वेदप्रकाश' का ग्राहक बना था। उस समय वह स्वनामधन्य श्री पण्डित तुलसीराम स्वामी के सम्पादकत्व में मेरठ से प्रकाशित होता था। यह अब से ७२ वर्ष पूर्व की बात है। मेरे पूज्यपाद अग्रज आर्यवीर राजकुमार श्री रणवीरसिंह भी ग्राहक थे। आपके श्रद्धेय पिताजी के दर्शन मैंने बहुत बार किए थे। वे आदर्श पुरुष थे। उनमें महर्षि दयानन्द सरस्वती के प्रति अगाध श्रद्धा थी। वैदिक धर्म के प्रचार की उनमें सच्ची लगन थी। आपके पितामह महोदय की गोभक्ति की जितनी भी प्रशंसा की जाय, कम है। आप धन्य हैं जो ऐसे पवित्र परिवार में उत्पन्न हुए हैं। यह भी हर्ष की बात है कि आपके पिताजी की शताब्दी मनाई जा रही है। आप जिस प्रकार से अपने पैतृक प्रभाव का निर्वाह कर रहे हैं, दृढ़ता से वैदिक धर्म का प्रशस्त प्रचार एवं प्रसार कर रहे हैं उसमें उत्तरोत्तर उन्नति हो, यही परमपिता प्रभु से प्रार्थना है।

भवदीय

राजर्षि रणञ्जयसिंह

भूतपूर्व सांसद (अमेठी)

महात्मा हंसराज ग्रन्थावली के प्रथम खण्ड की प्रति मुझे प्रो० राजेन्द्र जिज्ञासु ने भेज दी है। उसे मैंने पढ़ भी डाला है। वह मुझे बहुत पसन्द आई है।

—डॉ० भवानीलाल भारतीय

महात्मा हंसराज ग्रन्थावली के लिए १५०/- का चैक संलग्न है। आपके कार्यों के लिए बधाइयाँ।

—डॉ० जयप्रकाश गुप्ता, कानपुर

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली-६

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

स्व० श्री गोविन्दराम जी की जन्मशती के उपलक्ष्य में

इतिहासवेत्ता प्रो० राजेन्द्र जिज्ञासु द्वारा
संकलित तथा सम्पादित

महात्मा हंसराज ग्रन्थावली

वेदप्रकाश साइज के ८०० से अधिक पृष्ठों में
चार भागों में प्रकाशित होगी
पहला भाग २३१ पृष्ठों में

तपोनिधि महात्मा हंसराज और उनका युग

छपकर तैयार मूल्य ६०.००

पूरा सैट—चारों खण्डों का मूल्य २४०.००
३० अगस्त तक चारों खण्ड छपकर तैयार होंगे
प्रकाशन से पूर्व ३० अगस्त तक पूरे सैट का मूल्य १५०-०० । शीघ्र ग्राहक बनें।

स्व० श्री गोविन्दराम जी की जन्मशती के उपलक्ष्य में

एक और रियायत

३० अगस्त १९८६ तक

महात्मा हंसराज ग्रंथावली

का मूल्य भेज देने वाले ग्राहकों को

पं० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार

की बहुचर्चित पुस्तक

सत्य की खोज

मूल्य ५०.००

बिल्कुल मुफ्त

इस प्रकार २४०+५०=२९० रु० की पुस्तकें केवल १५०-०० में
(सुन्दर छपी आकर्षक सजिल्द बंधी पुस्तकें)

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली-११०००६

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वेदप्रकाश

संस्थापक : स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द

वर्ष ३६, अंक १] वार्षिक मूल्य : दस रुपये [अगस्त १९८६

सम्पा० : विजयकुमार आ० सम्पादक : स्वा० जगदीश्वरानन्द सरस्वती

१. वेद में ओ३म् महिमा

—आचार्य धर्मदेव 'मनीषी'

"ओ३म्" यह परमेश्वर का ही नाम है। इसमें प्रमाण—

मनो जूतिर्जुषतामाज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमं तनोत्वरिष्टं यज्ञँ समिमं दधातु। विश्वे देवासऽइह मादयन्तामो३म्प्रतिष्ठ॥

—यजुर्वेद अध्याय २, मन्त्र १३

अर्थ—मेरा (जूतिः) अत्यन्त वेग से कर्मों में व्याप्त होनेवाला (मनः) मनन-शील, ज्ञान-प्राप्ति का साधन मन (आज्यस्य) यज्ञ-सामग्री का (जुषताम्) प्रीतिपूर्वक सेवन करे। (बृहस्पतिः) बड़े-बड़े प्रकृति और आकाश आदि का रक्षक जगदीश्वर जिस (इमम्) प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्षरूप सुखभोग के नियम (यज्ञम्) संसार का जो यज्ञ (अरिष्टम्) नाशरहित है, (तनोतु) उसका विस्तार करे वा (सम्+दधातु) एकता के भाव से धारण करे। हे (विश्वेदेवासः!) सब विद्वानो! (इमम्) प्रत्यक्ष जो ज्ञान-यज्ञ है वह (अरिष्टम्) विनाशरहित तथा (यज्ञम्) हमारे द्वारा अनुष्ठान करने योग्य है। इस प्रकार के विनाशरहित एवं हिंसा-शून्य दोनों यज्ञों का विस्तार और एकीभाव से धारण करके (इह) इस संसार में अथवा अपने हृदय में (मादयन्ताम्) सदा आनन्दित रहो। हे (ओ३म्) ओंकार वाच्य (बृहस्पते) ईश्वर नामक यज्ञ वा वेदविद्या! तू इस संसार वा मेरे हृदय में (प्रतिष्ठ) प्रतिष्ठित हो एवं कृपा करके इस यज्ञ वा वेदविद्या को स्थापित कीजिए॥

भावार्थ—ईश्वर आज्ञा देता है हे मनुष्यो! तुम्हारा मन शुभ कर्मों को प्राप्त हो। मैं इस संसार में जिस यज्ञ को करने के लिए आज्ञा देता हूँ उसी का अनुष्ठान करके स्वयं सुखी रहो तथा अन्यों को भी सुखी करो। "ओ३म्" यह परमेश्वर का ही नाम है। जैसे पिता और पुत्र का प्रिय सम्बन्ध है, वैसे ही ईश्वर के साथ "ओंकार" का सम्बन्ध है। शुभकर्मों के बिना किसी की भी प्रतिष्ठा (सम्मान) नहीं हो सकती, इसलिए सब मनुष्य सब काल में अधर्म को छोड़कर धर्मकार्यों का ही सेवन करें, जिससे निश्चय ही अविद्या-अन्धकार की निवृत्ति होकर विद्या का सूर्य चमक उठे॥

—महर्षि दयानन्दभाष्य

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

शिक्षा—"ओंकार" परमात्मा का निज नाम है। जैसे एक मनुष्य माता-पिता की सन्तान होने से पुत्र कहलाता है, उसकी सन्तान उसे पिताजी कहकर पुकारती हैं, पत्नी की दृष्टि में वह पति है, भृत्यों के लिए वह स्वामी है; जितने मनुष्य जगत् में हैं, वे सभी पुत्र अवश्य हैं, अतः किसी मनुष्य का "पुत्र" यह विशेष नाम उचित नहीं होता; इसी प्रकार पिता आदि नामों की दशा जान लेनी चाहिए। उस मनुष्य को दूसरों से व्यावृत्त करने के लिए मनु, गौतम, कपिल, विष्णुमित्र, वसिष्ठ आदि किसी भी विशिष्ट नाम से अन्वित करना अनिवार्य हो जाता है। अनन्त गुणों और कर्मों के कारण परमात्मा के गौणिक तथा कार्मिक नाम भी अनन्त हैं। उन नामों के कारण नामी का कभी-कभी सांकर्य भी हो जाता है, यथा—परमात्मा का एक नाम दयालु है, किन्तु दया करनेवाला मनुष्य भी दयालु कहलाता है। इसी प्रकार न्यायकारी आदि नामों के विषय में जान लीजिए। हाँ, "ओ३म्" एक ऐसा नाम है जो परमात्मा के अतिरिक्त और किसी का नाम नहीं है। वेदादि शास्त्रों में परमात्मा का मुख्य नाम "ओ३म्" बताया गया है। मुख्य नाम व्यवहार के लिए होता है। महाभाष्यकार पतञ्जलिजी ने लिखा है—**'व्यवहारार्थं संज्ञाकरणं लोके'** नामकरण संसार में व्यवहार के लिए=बुलाने आदि के लिए होता है।

वेद में मनुष्य को सम्बोधन करके कहा गया है—**इयं ते यज्ञिया तनूः** (यजुर्वेद) तेरा यह तन सर्वपूज्य परमात्मा से मिलने का साधन है। अभिप्राय यह है कि जो जीव मनुष्य-तन में आया है, वह यदि चाहे तो परमात्मा से मिल सकता है। एक मनुष्य गूँगा=मूक उत्पन्न हुआ है। वह बेचारा भगवान् के विविध नामों—गाड, अल्लाह, ईश्वर आदि का उच्चारण नहीं कर सकता, तो क्या वह परमात्मपूजा की इच्छा करके भी वंचित रहेगा? नहीं-नहीं, ऐसा नहीं। भगवान् का एक ऐसा संक्षिप्त नाम है जिसे मूक भी बोल सकता है और वह है "ओ३म्"। ओ३म् के भगवान् का निज नाम होने में यह सबसे प्रबल और अकाट्य युक्ति है।

लोक में कई नाम निरर्थक होते हैं, जैसे किसी दरिद्र का नाम धनपति। परमेश्वर का कोई नाम निरर्थक नहीं है। इस 'ओ३म्' नाम के भी अर्थ हैं और वे हैं अतिगम्भीर। ऋषियों ने इस गम्भीरता को इस प्रकार व्यक्त किया है—

ओमित्येतदक्षरम्, इदं सर्वं तस्योपव्याख्यानं
भूतं भवद् भविष्यदिति सर्वमोंकार एव।

—माण्डूक्योपनिषद् १

'ओ३म्' यह अक्षर है, यह सम्पूर्ण भूत, वर्तमान तथा भविष्यत् ओंकार का छोटा-सा व्याख्यान है। सभी कुछ ओंकार में है। औपनिषद् शैली से ऋषि ने ओ३म् को सबका अधिष्ठान एवं सबका व्याख्येय बतला दिया है। शब्दान्तर में कहना हो तो यह कह सकते हैं कि यह समस्त जगत् उस परमतत्त्व ओ३म् का

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

बोध करा रहा है, दृष्टिकोण के परिवर्तन करने की आवश्यकता है। सीधी-सी बात है, कार्य मानो पुकार-पुकारकर अपने कर्त्ता का परिचय दे रहा होता है। यह कार्यजगत् अपने आदिमूल कर्त्ता की ओर संकेत कर रहा है।

योगदर्शन में कहा गया है—**"तस्य वाचकः प्रणवः"**=परमेश्वर का वाचक प्रणव है। सभी भाष्यकार प्रणव का अर्थ ओ३म् बताते हैं। योगिराज पतञ्जलि ने ओ३म्-जप का विधान करके उसका फल इस प्रकार निरूपण किया है—**'ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च'** =उस ओ३म्-जप से आत्मप्राप्ति तथा विघ्नों का अभाव होता है। आत्मा की प्राप्ति अमरपद है, अभय पद है।

माण्डूक्योपनिषद् में "ओ३म्" की व्युत्पत्ति इस प्रकार की है—

"सोऽयमात्माऽध्यक्षरमोङ्कारोऽधिमात्रं, पादा मात्राः, मात्राश्च पादाः। अकारः, उकारो, मकार इति ॥८॥

अर्थात् यह सर्वव्यापक परमात्मा ओम् अक्षर में अधिकृत है और मात्राओं में पाद हैं, मात्रा हैं, और पाद हैं अकार, उकार तथा मकार। परमात्मा का नाम ओम् है, अतः वह उसमें अधिकृत है। ओम् के पाद कहो वा मात्रा कहो, तीन हैं और वे हैं अकार, उकार तथा मकार। यहाँ ओ३म् अक्षर को अ, उ, म्, इन तीन अक्षरों या मात्राओं से बना हुआ बताया गया है। धर्मशास्त्रकार मनु महाराज ने भी ओ३म् को तीन अक्षरों से बना बताया है। यथा—

अकारं चाप्युकारं च मकारं च प्रजापतिः।
वेदत्रयान्निरदुहद् भूर्भुवःस्वरितीति च ॥२।७६

प्रजापति ने अकार, उकार, मकार तथा भुर्भुवः और स्वः को वेदत्रयी से दुहा।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने भी ऐसा ही माना है—

'अ उ म् एतत् त्रयं मिलित्वा ओम् इत्यक्षरं भवति।'

(पञ्चमहायज्ञविधि, गायत्रीमन्त्र-व्याख्या)

अर्थात् अ-उ-म् ये तीन मिलकर यह अक्षर बनता है।

सत्यार्थप्रकाश के प्रथम समुल्लास के आरम्भ में भी वे ऐसा ही लिखते हैं—

"यह ओंकार शब्द परमेश्वर का सर्वोत्तम नाम है, क्योंकि इसमें जो अ, उ और म् तीन अक्षर मिलकर एक ओ३म् समुदाय हुआ है, इस एक नाम से परमेश्वर के बहुत-से नाम आ जाते हैं।

माण्डूक्योपनिषद् में इन अ, उ, म् के बहुत सुन्दर अर्थ निरूपित हुए हैं। यथा—

"जागरितस्थानो वैश्वानरो अकारः प्रथमा मात्रा, आप्तेरादिमत्त्वाद्वा, आप्नोति ह वै सर्वान्, आदिश्च भवति य एवं वेद ॥९॥

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

"स्वप्नस्थानस्तैजसः, उकारो द्वितीया मात्रा, उत्कर्षादुभयत्वाद्वा । उत्कर्षति ह वै ज्ञानं सन्तति, समानश्च भवति, नास्याब्रह्मवित्कुले भवति, य एवं वेद ।।१०।।

"सुषुप्तस्थानः प्राज्ञोः मकारस्तृतीया मात्रा, मितेरपीतेर्वा मिनोति ह वा इदं सर्वम्, अपीतिश्च भवति य एवं वेद ।।११।।

अर्थात् ओ३म् की पहली अकार मात्रा परमात्मा के जागरित स्थान वैश्वानर रूप की परिचायक है। 'अ' की सिद्धि 'आप्' धातु से की जाती है वा आदि से, जो इस रहस्य को जानकर तदनुसार अनुष्ठान करता है, वह सभी अभिलाषाओं को प्राप्त कर लेता है और सबका आदि=नेता होता है ।।९।।

दूसरी उकार मात्रा परमात्मा के स्वप्न-स्थान तैजस् रूप का बोध कराती है। उत्कर्ष अथवा उभय से यह मात्रा निष्पन्न की जाती है। जो इस रहस्य को जानकर तदनुसार अनुष्ठान करता है, वह ज्ञान-सन्तान = विचार-विस्तार को बढ़ाता है, समान हो जाता है, उसके कुल में कोई अब्रह्मवित् नहीं होता ।।१०।।

ओम् की तीसरी मकार मात्रा परमात्मा के सुषुप्त स्थान और प्राज्ञरूप का ज्ञान देती है। यह 'मा' धातु से अथवा 'अपीति' से बनती है। जो इस तत्त्व को जानकर अनुष्ठान करता है, वह इस सबको समाप्त कर देता है और अपीति हो जाता है ।।२२।।

इन तीनों वाक्यों के सम्बन्ध में यदि यह कहा जाए कि गागर में सागर भर दिया गया है तो अत्युक्ति न होगी। हम संक्षेप से इस वाक्यत्रिक् का भावार्थ यहाँ देते हैं। 'ओ३म्' अ, उ, म् इन तीन मात्राओं से बनता है। 'अ' पहली मात्रा है, 'उ' दूसरी मात्रा है, 'म्' का स्थान तीसरा ही है। ये तीन मात्राएँ भगवान् के अनन्त रूपों में से मुख्य तीन का परिचय कराती हैं। वे तीन स्थितियाँ ऐसी हैं जिनका ज्ञान मनुष्य को भगवान् का पर्याप्त ज्ञान करा देता है।

ऋषि दयानन्दजी 'पंच-महायज्ञ-विधि' ग्रन्थ में गायत्रीमन्त्र-व्याख्या-प्रसंग में ओम् के सम्बन्ध में इस प्रकार लिखते हैं—

"जो अकार, उकार और मकार के योग से "ओम्" यह अक्षर सिद्ध है, सो यह परमेश्वर के सब नामों में उत्तम नाम है जिसमें सब नामों के अर्थ आ जाते हैं। जैसा पिता-पुत्र का प्रेम-सम्बन्ध है वैसे ही ओंकार के साथ परमात्मा का सम्बन्ध है। इस एक नाम से ईश्वर के सब नामों का बोध होता है।

जैसे अकार से—(विराट्) जो विविध जगत् का प्रकाश करनेवाला है। (अग्निः) जो ज्ञानस्वरूप और सर्वत्र प्राप्त हो रहा है। (विश्वः) जिसमें सब जगत् प्रवेश कर रहा है और जो सर्वत्र प्रविष्ट है—इत्यादि नामार्थ अकार से जानना चाहिए। उकार से—(हिरण्यगर्भः) जिनके गर्भ में प्रकाश करनेवाले सूर्यादि लोक हैं, और जो प्रकाश करनेहारे सूर्यादि लोकों का अधिष्ठान है, इससे ईश्वर को 'हिरण्यगर्भ' कहते हैं। हिरण्य के नाम ज्योति, अमृत और कीर्ति हैं। (वायुः) जो

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अनन्त बलवाला और सब जगत् का धारण करनेहारा है। (तैजसः) जो प्रकाश-स्वरूप और सब जगत् का प्रकाशक है। (ईश्वरः) जो सब जगत् का उत्पादक, सर्वशक्तिमान् स्वामी और न्यायकारी है। (आदित्यः) जो नाशरहित है। (प्राज्ञः) जो ज्ञानस्वरूप और सर्वज्ञ है—इत्यादि अर्थ मकार से समझ लेना। यह संक्षेप से ओंकार का अर्थ किया गया।"

सत्यार्थप्रकाश में ऋषि ने इनका कुछ अधिक विस्तार से निरूपण किया है, अतः सत्यार्थप्रकाश से वह स्थल उद्धृत किया जाता है—

'वि' उपसर्गपूर्वक "राजृदीप्तौ" इस धातु से क्विप् करने से विराट् शब्द सिद्ध होता है, 'यो विविधं नाम चराचरं जगद्राजयति प्रकाशयति स विराट्= विविध अर्थात् जो बहु प्रकार से जगत् को प्रकाशित करे इससे विराट् नाम से परमेश्वर का ग्रहण होता है। 'अञ्चु गतिपूजनयोः' अग, अगि इण् गत्यर्थक धातु हैं, इनसे अग्नि शब्द सिद्ध होता है। गतेस्त्रयोऽर्थाः, ज्ञानं गमनं प्राप्तिश्चेति, पूजनं नाम सत्कारः। योऽञ्चत्यञ्च्यतेऽगत्यङ्क्तीति वा सोऽयमग्निः=जो ज्ञानस्वरूप, सर्वज्ञ, जानने, प्राप्त होने और पूजा करने योग्य है, इससे उस परमेश्वर का नाम अग्नि है। 'विश प्रवेशने' इस धातु से विश्व शब्द सिद्ध होता है। विशन्ति प्रविष्टानि सर्वाण्याकाशादीनि भूतानि यस्मिन् स, यो वाऽऽकाशादिषु सर्वेषु भूतेषु प्रविष्टः स विश्व ईश्वरः=जिसमें आकाशादि सब भूत प्रवेश कर रहे हैं अथवा जो इसमें व्याप्त होके प्रविष्ट हो रहा है इसलिए उस परमेश्वर का नाम विश्व है—इत्यादि नामों का ग्रहण अकार मात्रा से होता है। ज्योतिर्वै हिरण्यम्, तेजो वै हिरण्यम्—इत्यैतरेये शतपथे च ब्राह्मणे। यो हिरण्ययानां सूर्यादीनां तेजसां गर्भ उत्पत्ति-निमित्तमधिकरणं स हिरण्यगर्भः=जिसमें सूर्यादि तेजवाले लोक उत्पन्न होके उसके आधार रहते हैं अथवा जो सूर्यादि तेजःस्वरूप पदार्थों का गर्भ नाम उत्पत्ति और निवास-स्थान है, इससे उस परमेश्वर का नाम हिरण्यगर्भ है। इसमें यजुर्वेद के १३।४ मन्त्र का प्रमाण है—

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

इत्यादि स्थलों में हिरण्यगर्भ से परमेश्वर ही का ग्रहण होता है। 'वा गति-गन्धनयोः' इस धातु से वायु शब्द सिद्ध होता है। गन्धनं हिंसनं, यो वाति चराचरं जगद्धरति बलिनां बलिष्ठः स वायुः। जो चराचर जगत् का धारण, जीवन और प्रलय करे और सब बलवालों से बलवान् है, इससे उस ईश्वर का नाम वायु है। 'तिज निशाने' इस धातु से तेजः और इससे तद्धित करने से तैजस् शब्द सिद्ध होता है। यः स्वयंप्रकाशः सूर्यादीनां तेजस्विनां लोकानां प्रकाशकः स तैजसः=जो आप स्वयंप्रकाश तथा सूर्यादि तेजस्वी लोकों का प्रकाश करनेवाला है, इससे उस ईश्वर का नाम तैजस् है—इत्यादि नामार्थ उकार मात्रा से ग्रहण करने होते हैं। 'ईश ऐश्वर्ये'

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

इस धातु से ईश्वर नाम सिद्ध होता है। य ईष्टे सर्वैश्वर्यवान् वर्त्तते स ईश्वरः= जिसका सत्य विचारशील ज्ञान और अनन्त ऐश्वर्य है इससे उस परमात्मा का नाम ईश्वर है। 'दो अवखण्डने' इस धातु से अदिति और इससे तद्धित करने से आदित्य शब्द सिद्ध होता है। न विद्यते दितिर्विनाशो यस्य सोऽयमदितिः, अदितिरेव आदित्यः=जिसका विनाश कभी न हो उसी ईश्वर की आदित्य संज्ञा है। 'ज्ञा अवबोधने', 'प्र' पूर्वक इस धातु से प्रज्ञ और इससे तद्धित करने से प्राज्ञ शब्द सिद्ध होता है। यः प्रकृष्टतया चराचरस्य जगतो व्यवहारं जानाति स प्रज्ञः, प्रज्ञ एव प्राज्ञः=जो निर्भ्रान्त ज्ञानयुक्त सब चराचर जगत् के व्यवहार को यथावत् जानता है, इससे ईश्वर का नाम प्राज्ञ है—इत्यादि नामार्थ मकार से गृहीत होते हैं। जैसे एक मात्रा से तीन-तीन अर्थ यहाँ व्याख्यात किये हैं वैसे ही अन्य नामार्थ भी ओंकार से जाने जाते हैं॥ —प्रथम समुल्लास

ऋषि दयानन्द ने एक-एक मात्रा से तीन-तीन अर्थ ग्रहण किये हैं। वे काल्पनिक नहीं हैं, उनका आधार माण्डूक्योपनिषद् है। यद्यपि माण्डूक्योपनिषद् में अकार से वैश्वानर, उकार से तैजस् और मकार से प्राज्ञ ग्रहण किया गया है, किन्तु विचारा जाए तो दयानन्दोक्त सब अर्थ माण्डूक्योपनिषद् में विद्यमान हैं।

ओम् शब्द की सिद्धि अव धातु से भी होती है। स्वामी दयानन्द ने महर्षि पाणिनि का अनुगमन करते हुए 'अवतीत्योम्' लिखकर इसकी सिद्धि 'अव' धातु से मानी है। अव धातु के अर्थ रक्षण, गति, कान्ति, प्रीति, तृप्ति, अवगम, प्रवेश, श्रवण, स्वाम्यर्थ, याचन, क्रिया, इच्छा, दीप्ति, अवाप्ति, आलिङ्गन, हिंसा, दान, भाग और वृद्धि हैं। जो सबकी रक्षा करे वह ओम्, जो सबको गति दे, सबको सदा प्राप्त हो, सबके जानने योग्य हो वह ओम्, जो सबसे अधिक कमनीय एवं कान्तिमय हो वह ओम्, जो सबसे सदा प्रीति करे, जिसकी प्रीति में कोई हेतु या स्वार्थ न हो वह ओम्, जो सबको तृप्त करता हो, जिसे प्राप्त कर परम तृप्ति होती है और किसी वस्तु की इच्छा नहीं रहती है वह ओम्, जो सबको अवगत =ज्ञात रखता है वह ओम्, जो सबमें प्रविष्ट और जिसमें सब प्रविष्ट हैं वह ओम्, जो सबकी सुनता है वह ओम्, जो सबके स्वार्थों की सिद्धि करके उनको स्वामित्व प्रदान करता है वह ओम्, जिससे राव-रंक, धनी-दरिद्र सभी याचना करते हैं वह ओम्, जो सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति, हृति सम्बन्धी क्रियाओं का कर्त्ता है वह शतक्रतु ओम्, जो सब दीप्तिमानों को दीप्ति देता है वह ओम्, जो सर्वत्र अवाप्त=व्याप्त है वह ओम्, सबमें व्याप्त होने से सबका आलिङ्गन जो कर रहा है वह ओम्, साधक-उपासक की पापवासनाओं की जो हिंसा करे, नाश करे वह ओम्, जो ज्ञान दे, जो ऐश्वर्य दान दे, जो सब प्रकार के दान दे, वह दाता ओम्, जो सबका भजनीय और सबके कार्यों के अनुसार उनको ऐश्वर्य का भाग देता है वह ओम्, जो सबसे वृद्ध, महान् है और जो सबकी वृद्धि करे वह

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ओम् है।

ओ३म् केवल परमात्मा का नाम है। ओ३म् के परमात्मा का नाम होने में स्वयं वेद प्रमाण है—**ओ३म् खं ब्रह्म** (यजु० ४०।१७) यजुर्वेद चालीसवें अध्याय में परमात्मा का वर्णन करके बतलाया है कि परमात्मा का नाम ओम् है, वह आकाशवत् सर्वव्यापक एवं ब्रह्म=सर्वतो महान् है।

वेद ने जप के लिए भी ओ३म् का प्रधान उपयोग माना है। तभी तो यजुर्वेद ४०।१५ में **'ओ३म् क्रतो स्मर'**=हे कर्मशील ! ओ३म् का स्मरण कर। ओ३म् का स्मरण सबसे सरल है। नन्हा बालक माता-पिता को मा, पा, कहता है। अज्ञानी जीव (जीव चाहे कितना भी ज्ञानी हो जाए, उसका अज्ञान बना ही रहता है।) भगवान् को सबसे सरल 'ओम्' नाम से स्मरण करता है। यजु० २।१३ में कहा गया है—**ओ३म् प्रतिष्ठ**=ओ३म् में आस्था रख।

वेद और शास्त्र ओम् की महिमा से भरे पड़े हैं। जन्म-मरण से तरण के लिए प्रणव सचमुच एक प्रबल सहारा है—

ओम् है जीवन हमारा, ओम् प्राणाधार है।
ओम् है कर्त्ता विधाता, ओम् पालनहार है॥
ओम् है दुःख का विनाशक, ओम् सर्वानन्द है।
ओम् है बल-तेजधारी, ओम् करुणाकन्द है॥
ओम् सबका पूज्य है, हम ओम् का पूजन करें।
ओम् ही के ध्यान से, हम शुद्ध अपना मन करें॥
ओम् के गुरुमन्त्र जपने से रहेगा शुद्ध मन।
बुद्धि दिन-प्रतिदिन बढ़ेगी, धर्म में होगी लगन॥
ओम् के जप से हमारा ज्ञान बढ़ता जायगा।
अन्त में यह जाप हमको मोक्ष तक पहुँचायगा॥

□

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

२. वेद में गुरुमन्त्र

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात्॥

—यजुर्वेद अध्याय ३६, मन्त्र ३

महर्षि दयानन्दजी इस मन्त्र का अर्थ इस प्रकार करते हैं—

(ओ३म्) यह ओंकार शब्द परमेश्वर का सर्वोत्तम नाम है, क्योंकि इसमें जो अ, उ और म् तीन अक्षर मिलकर एक ओ३म् समुदाय हुआ है, इस एक नाम से परमेश्वर के बहुत नाम आते हैं। जैसे अकार विराट्, अग्नि और विश्वादि, उकार हिरण्यगर्भ, वायु और तैजसादि, मकार ईश्वर, आदित्य और प्राज्ञादि नामों का वाचक तथा ग्राहक है।

उसका ऐसा ही वेदादि सत्यशास्त्रों में स्पष्ट व्याख्यान है कि प्रकरणानुकूल ये सब नाम परमेश्वर ही के हैं। अब तीन महाव्याहृतियों के अर्थ संक्षेप से लिखते हैं—**'भूरिति वै प्राणः'** 'यः प्राणयति चराऽचरं जगत् स भूः स्वयम्भूरीश्वरः, जो सब जगत् के जीवन का आधार, प्राण से भी प्रिय और स्वयम्भू है उस प्राण का वाचक होके 'भूः' परमेश्वर का नाम है।

'भुवरित्यपानः' यः सर्वं दुःखमपानयति सोऽपानः—जो सब दुःखों से रहित, जिसके संग से जीव सब दुःखों से छूट जाते हैं, इसलिए उस परमेश्वर का नाम 'भुवः' है। **'स्वरिति व्यानः'** यो विविधं जगद् व्याप्नोति स व्यानः—जो नानाविध जगत् में व्यापक होके सबका धारण करता है, इसलिए उस परमेश्वर का नाम 'स्वः' है।

ये तीन वचन तैत्तिरीय आरण्यक (प्रपा० ७। अनु० ५) के हैं। **सवितुः यः सुनोत्युत्पादयति सर्वं जगत् स सविता तस्य**—जो सब जगत् का उत्पादक और सब ऐश्वर्य का दाता है, **देवस्य यो दीव्यति दीव्यते वा स देवः**—जो सर्व सुखों का देनेहारा और जिसकी प्राप्ति की कामना सब करते हैं उस परमात्मा का, जो **वरेण्यम् वर्तुमर्हम्** स्वीकार करने योग्य अतिश्रेष्ठ **भर्गः** शुद्धस्वरूप और पवित्र करनेवाला चेतन ब्रह्मस्वरूप है **तत्** उसी परमात्मा के स्वरूप को हम लोग

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

धीमहि, धरेमहि, धारण करें। किस प्रयोजन के लिए ? कि **यः** जगदीश्वर जो सविता देव परमात्मा **'नः' 'अस्माकम्'** हमारी **'धियः' बुद्धीः** बुद्धियों को **(प्रचोदयात्)** प्रेरयेत्, प्रेरणा करे, अर्थात् बुरे कामों से छुड़ाकर अच्छे कामों में प्रवृत्त करे।

हे परमेश्वर ! हे सच्चिदानन्दस्वरूप ! हे नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभाव ! हे अज, निरञ्जन निर्विकार ! हे सर्वान्तर्यामिन् ! हे सर्वाधार जगत्पते ! सकल जगदुत्पादक ! हे अनादे ! विश्वम्भर सर्वव्यापिन् ! हे करुणामृतवारिधे ! सवितुर्देवस्य तव यदोम्भूर्भुवः स्वर्वरेण्यं भर्गोस्ति, तद्वयं धीमहि दधीमहि धरेमहि ध्यायेम वा। कस्मै प्रयोजनायेत्यत्राह—हे भगवन् ! यः सविता देवः परमेश्वरो भवन्नस्माकं धियः प्रचोदयात्, स एवास्माकं पूज्य उपासनीय इष्टदेवो भवतु नातोऽन्यं तवत्तुल्यं भवतोऽधिकं च कंचित् कदाचिन्मन्यामहे।

हे मनुष्यो ! जो समर्थों में समर्थ, सच्चिदानन्दानन्तस्वरूप, नित्य शुद्ध, नित्य बुद्ध, नित्य मुक्त स्वभाववाला, कृपासागर, ठीक-ठीक न्याय का करनेहारा, जन्ममरणादिक्लेशरहित, आकाररहित, सबके घट-घट का जाननेवाला, सबका धर्त्ता, पिता, उत्पादक, अन्नादि से विश्व का पोषण करनेहारा, सकल ऐश्वर्य-युक्त, जगत् का निर्माता, शुद्धस्वरूप, और जो प्राप्ति की कामना करने योग्य है, उस परमात्मा का जो शुद्ध चेतनस्वरूप है, उसी को हम धारण करें। इस प्रयोजन के लिए कि वह परमेश्वर हमारे आत्मा और बुद्धियों का अन्तर्यामिस्वरूप हमको दुष्टाचार, अधर्मयुक्त मार्ग से हटाके श्रेष्ठाचार सत्यमार्ग में चलावे। उसको छोड़कर दूसरे किसी वस्तु का ध्यान हम लोग नहीं करें, क्योंकि न कोई उसके तुल्य और न अधिक है। वही हमारा पिता, राजा, न्यायाधीश और सब सुखों का देनेहारा है।

इस मन्त्र को सम्पूर्ण वेदों में शिरोमणि मन्त्र माना गया है। ऋषियों का आदेश है कि मन्त्रों के आदि तथा अन्त में यज्ञ के समय 'ओ३म्' का प्रयोग करना चाहिए अर्थात् मन्त्र के आरम्भ में प्लुत (त्रिमात्रिक) ओ३म् का उच्चारण करना चाहिए, इसी प्रकार मन्त्र के 'टि' भाग के (यदि अन्त में स्वर हो तो वह टि कहलाता है) यदि अन्त में व्यंजन हो तो व्यंजन से पूर्ववर्ती स्वरसमेत वह व्यंजन 'टि' होता है। जैसे मन्त्र का अन्तिम 'आत्' टि है, इसके स्थान में ओ३म् पढ़ना चाहिए। इस व्यवस्था के अनुसार 'प्रचोदयात्' के स्थान में 'प्रचोदयोम्' पढ़ना चाहिए।

इस विषय में महर्षि मनु का आदेश इस प्रकार है—

ब्रह्मणः प्रणवं कुर्यादादावन्ते च सर्वदा।
स्रवत्यनोंकृतं पूर्वं पुरस्ताच्च विशीर्यति ॥२।७४॥

वेद=वेद-अध्ययन के आदि तथा अन्त में सदा प्रणव=ओ३म् का प्रयोग

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

करे, क्योंकि आरम्भ में ओ३म् न करने से वह धीरे-धीरे नष्ट होता है, और अन्त में ओ३म् न करने से भी वह नष्ट हो जाता है।

महर्षि पाणिनिजी ने इस बात का इस प्रकार प्रतिपादन किया है—

ओमाभ्यादाने (८।२।८७) =अभ्यादान=मन्त्र के आरम्भ में उदात्तप्लुत ओ३म् पढ़ना चाहिए।

प्रणवष्टेः (८।२।८९) यज्ञकर्म में मन्त्र के टि भाग को उदात्त प्रणव=आदेश होता है।

दोनों महर्षियों के आदेश में थोड़ा-सा भेद प्रतीत होता है। मनु महाराज मन्त्र के अन्त में ओ३म् का विधान करते हैं। आचार्य पाणिनि 'टि' भाग के स्थान में ओ३म् का आदेश करते हैं।। तनिक-सा विचार किया जाए तो यह भेद नहीं है। 'टि' भी मन्त्र का अन्त ही है। तात्पर्य यह है कि मन्त्र के अन्त में ओ३म् अवश्य पढ़ना चाहिए। जो व्याकरणानभिज्ञ 'टि' का विवेक न रखता हो वह मन्त्र के अन्तिम अक्षर के पश्चात् पढ़े, पढ़े अवश्य, न पढ़ने से उसका वेद-पाठ मनु के मतानुसार व्यर्थ=अर्थहीन हो जाता है, क्योंकि वेदों का मुख्य अर्थ ओ३म्= ईश्वर है जैसा कि कठोपनिषत् में कहा गया है—

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्यो३म् इत्येतत्॥

जिस पद का सम्पूर्ण वेद पुनः-पुनः अभ्यास करते हैं=दोहराते हैं, सारे तप जिसके उद्देश्य से किये जाते हैं, जिसकी इच्छा करते हुए लोग ब्रह्मचर्य का आचरण करते हैं, हे नचिकेतः! संक्षेप से तुझे बताता हूँ वह पद ओ३म् है।

वेद के सम्पूर्ण मन्त्र या तो स्तुतिपरक हैं, या प्रार्थनापरक हैं अथवा उपासना-विधायक हैं। अनेक मन्त्र ऐसे भी हैं जिनमें स्तुति तथा प्रार्थना दोनों हैं। अनेकों में स्तुति के साथ उपासना का मिश्रण है। कहीं प्रार्थना और उपासना दोनों हैं। यह सावित्री=गायत्री ऐसा मन्त्र है जिसमें स्तुति, प्रार्थना तथा उपासना तीनों हैं। इस हेतु यह सब मन्त्रों में श्रेष्ठ कहलाता है। इस मन्त्र में स्तुति, प्रार्थना, उपासना इन तीनों का दिग्दर्शन कराने से पूर्व स्तुति आदि का संक्षिप्त लक्षण दे देना आवश्यक है।

स्तुति—जो पदार्थ जैसा है, उसको वैसा कहना स्तुति है। किसी पदार्थ के गुण-दोषों का विवेचन करके गुण को गुण और दोष को दोष कहना स्तुति है।

प्रार्थना—स्तुति के द्वारा मनुष्य को अपनी न्यूनता का बोध होता है। उस न्यूनता को पूरा करने के लिए व्यग्र होकर पुरुषार्थमयी कामना का नाम प्रार्थना है।

उपासना—प्रार्थना के द्वारा प्राप्तव्य वस्तु के प्राप्त करने का नाम उपासना है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश के सप्तम समुल्लास में स्तुति आदि का फल यह लिखा है—

"स्तुति से ईश्वर में प्रीति, उसके गुण-कर्म-स्वभाव से अपने गुण-कर्म-स्वभाव का सुधारना, प्रार्थना से निरभिमानता, उत्साह और सहाय का मिलना, उपासना से परब्रह्म से मेल और उसका साक्षात्कार होना।" आगे चलकर फिर लिखा है—

"इस स्तुति का फल यह है कि जैसे परमेश्वर के गुण हैं वैसे गुण, कर्म, स्वभाव अपने भी करना। जैसे वह न्यायकारी है तो आप भी न्यायकारी होवे और जो केवल भाण्ड के समान परमेश्वर के गुण-कीर्तन करता जाता है और अपना चरित्र नहीं सुधारता है उसकी स्तुति करना व्यर्थ है।"

"परमेश्वर भी सबके उपकार करने की प्रार्थना में सहायक होता है, हानि-कारक कर्म में नहीं। जो कोई 'गुड़ मीठा है' ऐसा कहता है उसको गुड़ व उसका स्वाद कभी प्राप्त नहीं होता और जो यत्न करता है उसको शीघ्र वा विलम्ब से गुड़ मिल ही जाता है।"

"इस उपासना का फल=जैसे शीत से आतुर मनुष्य का अग्नि के पास जाने से शीत निवृत्त हो जाता है वैसे परमेश्वर के समीप प्राप्त होने से सब दोष, दुःख छूटकर परमेश्वर के गुण-कर्म-स्वभाव के सदृश जीवात्मा के गुण-कर्म-स्वभाव पवित्र हो जाते हैं। इसलिए परमेश्वर की स्तुति-प्रार्थना और उपासना अवश्य करनी चाहिए। इससे इसका फल पृथक् होगा। परन्तु आत्मा का बल इतना बढ़ेगा कि वह पर्वत के समान दुःख प्राप्त होने पर भी न घबराएगा और सबको सहन कर सकेगा। क्या यह छोटी बात है ? जो परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना नहीं करता है वह कृतघ्न और महामूर्ख भी होता है, क्योंकि जिस परमात्मा ने इस जगत् के पदार्थ जीवों के सुख के लिए दे रखे हैं, उसका गुण भूल जाना, ईश्वर को ही न मानना कृतघ्नता और महामूर्खता है।"

अब गुरुमन्त्र में इन तीनों को देखिए—

सबसे पहले जिज्ञासा होती है कि ओ३म् वाच्य परमेश्वर कैसा है—अर्थात् उसका स्वरूप क्या है ? तो उत्तर मिलता है वह भूः भुवः स्वः, सत् चित् आनन्द =सच्चिदानन्द है। इस स्तुति से ज्ञात होता है कि हममें आनन्द नहीं है।

हम आनन्द की खोज में लग रहे हैं। इस स्तुति से भाव हुआ कि हमें यह आनन्द उस ओम् वाच्य ब्रह्म से मिलेगा। अतः उसकी प्राप्ति के लिए **'तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि**। सवितादेव के उस (स्तुति से ज्ञात) सर्वश्रेष्ठ दुःखमूल पापों के नाशक भर्ग आनन्दस्वरूप को धारण करें तथा ध्यायें। धीमहि प्रार्थना में आया है, तेज-धारण ध्यान से सम्भव है, ध्यान उपासना का साधन है, अतः मन्त्रांश में प्रार्थना तथा उपासना का समावेश है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

साधकों का अनुभव है कि ब्रह्मज्योति उसके सामने विद्युत् के समान आकर छिप जाती है। साधारण जनों का अनुभव है कि कई वार सद्गुण का उदय होकर उसका फिर लोप जाता है। यह प्राप्त भर्ग हमसे कहीं लुप्त न हो जाए इसलिए पुनः प्रार्थना है—"धियो यो नः प्रचोदयात्।" वह सविता देव हमारी बुद्धियों को उत्तम प्रेरणा दे, अर्थात् भर्ग-प्राप्तिसमय की बुद्धि सदा स्थिर बनी रहे। इसके लिए यजुर्वेद २२।१४ में प्रार्थना है—**'धिया भर्गं मनामहे'** बुद्धि द्वारा हम भगवान् तथा उसके ऐश्वर्य का मनन करते रहें।

इस मन्त्र को गुरुमन्त्र कहा जाता है। वैदिकों के यहाँ जब बालक विद्याग्रहण के योग्य समझा जाता है तब उसके दो संस्कार कराये जाते हैं—एक यज्ञोपवीत और दूसरा वेदारम्भ। वैदिकधर्मियों के जिन कुलों को पोपों ने वेदाध्ययन से वंचित कर दिया, उन कुलों से इन दोनों का लोप हो गया। उनके यहाँ वेदारम्भ के स्थान पर विद्यारम्भ संस्कार का प्रचलन होने लगा। वास्तव में विद्यारम्भ (संस्कार-विशेष के बिना) माता की गोद में ही हो जाता था। उस वेदारम्भ संस्कार का प्रयोजन बालक को वेदाध्ययन का अधिकार देना होता था। वेदाधिकार देने के लिए आचार्य सर्वप्रथम इस मन्त्र का उपदेश बालक को देता था, अतः इस मन्त्र का नाम गुरुमन्त्र पड़ गया है।

इस मन्त्र का देवता, प्रतिपाद्य विषय सविता है, अतः यह मन्त्र सविता का होने से सावित्री ऋचा भी कहलाता है। तत्सवितुर्वरेण्यं से आरम्भ करके प्रचोदयात् तक मन्त्र का छन्द गायत्री है, अतः इसे सर्वसाधारण की परिभाषा में गायत्री भी कहते हैं।

महर्षि दयानन्दजी महाराज ने संस्कारविधि के वेदारम्भ संस्कार में इस गुरु-मन्त्र का संक्षिप्त अर्थ इस प्रकार किया है—

(ओ३म्) यह मुख्य परमेश्वर का नाम है, जिस नाम के साथ अन्य सब नाम लग जाते हैं (भूः) जो प्राण का भी प्राण (भुवः) सब दुःखों से छुड़ानेहारा (स्वः) स्वयं सुखस्वरूप और अपने उपासकों को सब सुख की प्राप्ति करानेहारा है, उस (सवितुः) सब जगत् की उत्पत्ति करनेवाले, सूर्यादि प्रकाशकों के भी प्रकाशक समग्र ऐश्वर्य के दाता (देवस्य) कामना करने योग्य, सर्वत्र विजय करानेहारे परमात्मा का जो (वरेण्यम्) अतिश्रेष्ठ, ग्रहण और ध्यान करने योग्य (भर्गः) सब क्लेशों को भस्म करनेहारा, पवित्र, शुद्ध स्वरूप है (तत्) उसको हम लोग (धीमहि) धारण करें (यः) यह जो परमात्मा (नः) हमारी (धियः) बुद्धियों को उत्तम गुण, कर्म, स्वभावों में (प्रचोदयात्) प्रेरणा करे।

इसी प्रयोजन के लिए इस जगदीश्वर की स्तुतिप्रार्थनोपासना करना और इससे भिन्न किसी को उपास्य, इष्टदेव, उसके तुल्य वा उससे अधिक नहीं मानना चाहिए।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

महर्षि दयानन्दजी ने पञ्चमहायज्ञविधि में गुरु-मन्त्र का अर्थ संस्कृत भाषा में विस्तार से किया है, उसको आर्यभाषा (हिन्दी) में प्रस्तुत करते हैं—

"इस सर्वोत्कृष्ट गायत्री मन्त्र का संक्षेप से अर्थ कहा जाता है (ओं३भूर्भुवः स्वः) अकार, उकार और मकार के योग से 'ओम्' यह अक्षर सिद्ध है। सो यह परमेश्वर के सब नामों में उत्तम नाम है, जिसमें सब नामों के अर्थ आ जाते हैं। जैसा पिता-पुत्र का प्रेम-सम्बन्ध है वैसे ही ओंकार के साथ परमात्मा का सम्बन्ध है। इस एक नाम से ईश्वर के सब नामों का बोध होता है। जैसे—अकार से विराट्, अग्नि, विश्वादि। 'विराट्' जो विविध जगत् का प्रकाश करनेवाला है। 'अग्निः' जो ज्ञानस्वरूप और सर्वत्र प्राप्त हो रहा है। 'विश्वः' जिसमें सब जगत् प्रवेश कर रहा है और जो सर्वत्र प्रविष्ट है, इत्यादि नामार्थ अकार से जानना चाहिए। उकार से हिरण्यगर्भ, वायु, तैजस् आदि। 'हिरण्यगर्भः' जिसके गर्भ में प्रकाश करनेवाले सूर्यादि लोक हैं और जो प्रकाश करनेहारे सूर्यादि लोकों का उत्पन्न करनेवाला है, इससे ईश्वर को हिरण्यगर्भ कहते हैं। ज्योति के नाम हिरण्य, अमृत और कीर्ति हैं। 'वायुः' जो अनन्त बलवाला और जो सब जगत् का धारण करनेहारा है। 'तैजसः' जो प्रकाशस्वरूप और सब जगत् का प्रकाशक है, इत्यादि अर्थ उकार मात्रा से जानने चाहिएँ। मकार से ईश्वर, आदित्य, प्राज्ञ आदि समझें। 'ईश्वरः' जो सब जगत् का उत्पादक, सर्वशक्तिमान्, स्वामी और न्यायकारी है। 'आदित्य' जो नाशरहित है, 'प्राज्ञः' जो ज्ञानस्वरूप और सर्वज्ञ है, इत्यादि अर्थ मकार से समझ लेना। यह संक्षेप से ओंकार का अर्थ किया गया।

अब संक्षेप से महाव्याहृतियों का अर्थ लिखते हैं—(भूरिति वै प्राणः) जो सब जगत् के जीने का हेतु और प्राण से भी प्रिय है, इससे परमेश्वर का नाम 'भूः' है। (भुवरित्यपानः) जो मुक्ति की इच्छा करनेवालों, मुक्तों और अपने सेवक धर्मात्माओं को सब दुःखों से अलग करके सर्वदा सुख में रखता है, इसलिए परमेश्वर का नाम 'भुवः' है। (स्वरिति व्यानः) जो सब जगत् में व्यापक होके सबको नियम में रखता है और सबके ठहरने का स्थान तथा सुखस्वरूप है, इससे परमेश्वर का नाम 'स्वः' है। यह महाव्याहृतियों का अर्थ संक्षेप से लिख दिया।

गायत्री मन्त्र का अर्थ—(सवितुः) जो सकल जगत् को उत्पन्न करता है वह सबका पिता, सबका स्वामी 'सविता' परमात्मा है। (वरेण्यम्) जो अति श्रेष्ठ होने से वरण करने योग्य है। (भर्गः) जो उपद्रवरहित, निष्पाप, निर्गुण, शुद्ध, सब दोषों से रहित, पक्व, परमार्थ, विज्ञानस्वरूप है। (देवस्य) जो सारे जगत् को प्रकाशित तथा आनन्दित करता है उस देव की हम (धीमहि) नित्य उपासना करें। किस प्रयोजन के लिए? उसके धारण करने से ही हम विज्ञान आदि बल के द्वारा पुष्ट, दृढ़ और सुखी हो सकते हैं—इस प्रयोजन के लिए तथा (यः) जो परमेश्वर (नः) हमारी (धियः) बुद्धियों को (प्रचोदयात्) शुभ कर्मों में प्रेरित करे।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

हे सत् चित् आनन्द अनन्तस्वरूप ! हे नित्य शुद्ध-बुद्ध-मुक्त-स्वभाव ! हे अज ! हे निराकार ! सर्वशक्तिमन् ! न्यायकारीन् ! हे करुणा के सागर ! तुझ सविता देव का जो अतिश्रेष्ठ शुद्ध स्वरूप है उसका हम ध्यान करें। किस प्रयोजन के लिए ? जो सविता देव परमेश्वर वह हमारी बुद्धियों को शुभ कर्मों में प्रेरित करे। जिसका ध्यान, प्रार्थना करने से वह सबका इष्टदेव परमेश्वर अपनी कृपा-दृष्टि से और अपनी शक्ति से ब्रह्मचर्य, विद्या, विज्ञान, सद्धर्म, जितेन्द्रियत्व, परब्रह्मानन्द को प्राप्त होनेवाली बुद्धि हमें प्रदान करता है। उस परमात्मा का हम ध्यान करें। यह गायत्री मन्त्र का संक्षिप्त अर्थ है।

इस प्रकार प्रातः-सायं सन्धिवेला में एकान्त देश में जा शान्त हो आत्मा को वश में कर प्रतिदिन परमेश्वर का ध्यान करें।

गायत्री मन्त्र में परमात्मा से प्रार्थना की गई है कि हे सकल जगत् के उत्पादक ईश्वर ! आप मेरी बुद्धि को शुद्ध कर्मों में प्रेरित कीजिए। बुद्धि का शुभ कर्मों में प्रेरित होना मुक्ति की ओर प्रथम चरण है।

महर्षि दयानन्द सत्यार्थप्रकाश नवम समुल्लास में लिखते हैं—

"जब इन्द्रियाँ अर्थों में, मन इन्द्रियों और आत्मा मन के साथ संयुक्त होकर प्राणों को प्रेरणा करके अच्छे वा बुरे कर्मों में लगता है तभी वह बहिर्मुख हो जाता है। उसी समय भीतर से आनन्द, उत्साह, निर्भयता और बुरे कर्मों में भय, शंका, लज्जा उत्पन्न होती है, वह अन्तर्यामी परमात्मा की शिक्षा है। जो कोई इस शिक्षा के अनुकूल वर्त्तता है वही मुक्तिजन्य सुखों को प्राप्त होता है और जो विपरीत वर्त्तता है वह बन्धजन्य दुःख भोगता है।

महर्षि दयानन्दजी ने यजुर्वेद अध्याय ३६ मन्त्र ३ में गुरुमन्त्र का इस प्रकार अर्थ किया है—

"हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग (भूः) कर्म-विद्या, (भुवः) उपासना-विद्या, (स्वः) ज्ञान-विद्या को पढ़कर (यः) जो (नः) हमारी (धियः) बुद्धियों को (प्रचोदयात्) प्रेरित करता है, उस (देवस्य) कामना करने योग्य (सवितुः) सकल ऐश्वर्य के दाता ईश्वर के (वरेण्यम्) स्वीकार करने योग्य (भर्गः) सब दुःखों के नाशक तेजःस्वरूप का (धीमहि) ध्यान करते हैं, वैसे तुम भी इसका ध्यान करो॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलंकार है। जो मनुष्य कर्म-विद्या, उपासना-विद्या और ज्ञान-विद्या को ग्रहण करके, अखिल ऐश्वर्य से युक्त परमात्मा के साथ अपने आत्मा को युक्त करते हैं, वे अधर्म, अनैश्वर्य और दुःख को दूर करके, धर्म, ऐश्वर्य और सुख को प्राप्त होते हैं। उनसे अन्तर्यामी जगदीश्वर स्वयं धर्मानुष्ठान और अधर्म का त्याग सदा कराना चाहता है।"

अभिप्राय यह है कि विद्वान् लोग कर्म-विद्या, उपासना-विद्या और ज्ञान-विद्या को पढ़कर, जो ईश्वर उनकी बुद्धियों को शुभ गुण-कर्म-स्वभाव में प्रेरित

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

करता है, उस कामना करने के योग्य, सकल ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले ईश्वर के स्वीकार करने योग्य सब दुःखों के विनाशक तेजःस्वरूप का ध्यान करें, उसकी उपासना करें। परमात्मा के साथ अपने आत्मा को संयुक्त करें। अधर्म, अनैश्वर्य और दुःख को दूर करके धर्म, ऐश्वर्य और सुख को प्राप्त करें। अन्तर्यामी जगदीश्वर धर्माचरण तथा अधर्म-त्याग की सदा कामना रखता है।

इस मन्त्र में उपमावाचक 'इव' आदि पद लुप्त है, अतः वाचकलुप्तोपमा अलंकार है। उपमा यह है सब मनुष्य विद्वानों के तुल्य ईश्वर की उपासना करें।

महर्षि मनुजी ने मनुस्मृति अध्याय २ श्लोक ७६ से ८३ तक सावित्री जप के महत्त्व के सम्बन्ध में इस प्रकार आदेश किया है—

अकारं चाप्युकारं च मकारं च प्रजापतिः।
वेदत्रयान्निरदुहद् भूर्भुवःस्वरितीति च॥
त्रिभ्य एव तु वेदेभ्यः पादं पादमदूदुहत्।
तदित्यृचोऽस्याः सावित्र्याः परमेष्ठी प्रजापतिः॥
एतदक्षरमेतां च जपन् व्याहृतिपूर्विकाम्।
सन्ध्ययोर्वेदविद् विप्रो वेदपुण्येन युज्यते॥
सहस्रकृत्वस्त्वभ्यस्य बहिरेतत् त्रिकं द्विजः।
महतोऽप्येनसो मासात् त्वचेवाहिर्विमुच्यते॥
एतयर्चाविसंयुक्तः काले च क्रियया स्वया।
ब्रह्मक्षत्रियविड्योनिर्गर्हणां याति साधुषु॥
ओंकारपूर्विकास्तिस्रो महाव्याहृतयोऽव्ययाः।
त्रिपदा चैव सावित्री विज्ञेयं ब्रह्मणो मुखम्॥
योऽधीतेऽहन्यहन्येतां त्रीणि वर्षाण्यतन्द्रितः।
स ब्रह्म परमभ्येति वायुभूतः खमूर्तिमान्॥
एकाक्षरं परं ब्रह्म प्राणायामः परं तपः।
सावित्र्यास्तु परं नास्ति मौनात्सत्यं विशिष्यते॥

भावार्थ—प्रजापति परमात्मा ने ऋग् = पद्य, यजु = गद्य तथा साम = गानमय तीन वेदों से अकार, उकार और मकार (अ उ म्) और भूः भुवः स्वः इनका दोहन किया। परमेष्ठी प्रजापति ने तीन ही वेदों से (गद्य, पद्य, गानात्मक वेदत्रयी से) तत्सवितुर् इस सावित्री मन्त्र के एक-एक पाद को दोहा। इस (ओम्) अक्षर और व्याहृति (भूः भुवः स्वः) पूर्वक इस सावित्री ऋचा को दोनों (प्रातः और सायं की) सन्ध्याओं में जपनेवाला वेदवित् विप्र = मेधावी वेदाध्ययन के पुण्य से युक्त होता है। एक मास तक बाहर = एकान्त स्थान में प्रतिदिन एक हजार बार गायत्री का जप करनेवाला द्विज बड़े भारी पाप से भी छूट जाता है जैसे सर्प

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

कैंचुली से छूट जाता है। इस सावित्री ऋचा के जप से रहित और समय पर अपनी क्रिया से च्युत द्विज सज्जनों में घृणा का पात्र हो जाता है। ओंकारपूर्वक तीनों महाव्याहृतियाँ तथा त्रिपदा सावित्री मन्त्र वेद का मुख कहा जाता है। जो निरालस्य होकर तीन वर्षों तक निरन्तर प्रतिदिन इसका जप करता है, वह प्राणमय होकर आकाश की भाँति निर्लेप होकर परब्रह्म को प्राप्त कर लेता है। एकाक्षर (ओ३म्) परब्रह्म की प्राप्ति का साधन है, प्राणायाम पर=उत्कृष्ट तप है, सावित्री=गायत्री मन्त्र से कुछ भी श्रेष्ठ नहीं है। मौन की अपेक्षा सत्य की विशिष्टता है।

"ओ३म्" हो रक्षक हमारे, सब गुणों की खान हो।
'भूः' सदा सब प्राणियों में, प्राण के भी प्राण हो॥
'भुवः' सब दुःखों को करते दूर कृपानिधान हो।
'स्वः' सदा सुखरूप सुखमय, सुखद सुखधि महान् हो॥
'तत्' वही सुप्रसिद्ध ब्रह्म, देव वर्णित सार हो।
देव 'सवितुः' सर्व उत्पादक हो, पालनहार हो॥
शुभ 'वरेण्यम्' वरण करने योग्य भगवन् आप हो।
शुद्ध 'भर्गः' मलरहित, निर्लेप हो निष्पाप हो॥
दिव्य गुण 'देवस्य' दिव्यस्वरूप देव अनूप के।
'धीमहि' धारें हृदय में, दिव्य गुण सब आपके॥
'धियो यो नः' वह हमारी बुद्धियों का हित करे।
'अमर' 'प्रचोदयात्' नित सन्मार्ग पर प्रेरित करे॥

□

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

३. वेद में ब्रह्मचर्य-महिमा

बाल विद्यार्थियो ! तुमने रामायण की कथा में आर्य राजा राम के दूत हनुमान् और अंगद का हाल सुना होगा। महाभारत में पाण्डवों की ओर से श्रीकृष्ण का दूत बनकर दुर्योधन की सभा में जाने का वर्णन है। हनुमान् और अंगद विद्वान् थे। यह उनके वार्तालापों और व्यवहार से प्रकट है। भगवान् श्रीकृष्ण के विद्वान् होने में किसी को सन्देह ही क्या हो सकता है ? उनकी गीता इस बात का स्वतःप्रमाण है। अकेले हनुमान् भरी-पूरी लंका का दहन करके लौटे थे। रावण की भरी सभा में अंगद का जमाया पैर[1] कोई हिला तक न सका। दुश्मनों के हृदयों पर दोनों का आतंक छा गया था। किसी की यह हिम्मत न हो सकी कि उनका बाल भी बाँका कर सके। भगवान् कृष्ण ने कौरव-पाण्डवों में मेल कराने की जी-तोड़ कोशिश की। यहाँ तक दुर्योधन से कह दिया कि तुम सारा राज भोगो, पाण्डवों को सिर्फ पाँच गाँव दे दो, वे विचारे इसी पर संतोष कर लेंगे। किन्तु दुर्योधन समझता था कि पाण्डव शक्ति खो चुके हैं, थक चुके हैं, सैन्य बल नहीं रखते। इसलिए शान्ति के प्रस्ताव को पाशविक शक्ति के मद में चूर, अन्ध-पुत्र ने कृष्ण के कल्याणमय प्रस्ताव को बराबर पैरों से ठुकराया। यही नहीं, उन्हें कैद भी करना चाहा। लेकिन श्रीकृष्ण साधारण दूत न थे। तेजस्वी थे, ओजस्वी थे, पराक्रमी थे, कुछ बाहुबल का भी भरोसा रखते थे। जिस समय कृष्ण की त्यौरी बदली देखी, दुश्मनों के दिल में धड़कन पड़ गई, ऐसा आतंक छा गया कि पकड़ने को किसी का हाथ तक न उठ सका, मानो लकवा मार गया है, अथवा हाथ टूट गये हैं। वीर बालको ! तुममें से प्रत्येक असहाय माँ कुन्तीरूप भारतमाता का दूत है, प्रतिनिधि है। यदि तुम अभी से चाहो तो अंगद, हनुमान् और कृष्ण जैसे भावी अखण्ड भारतीय राष्ट्र के वीर दूत बन सकते हो। आओ, अथर्ववेद के ब्रह्मचर्य-महिमा के छह-सात मन्त्रों पर थोड़ा मनन करें,

---

१. महर्षि वाल्मीकिरचित रामायण में अङ्गद के रावण की सभा में पैर जमाने का वर्णन नहीं है। यह तुलसीदासजी की कपोल-कल्पना है।
(सम्पादक)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

और देखें कल्याणी वेदमाता हमें क्या उपदेश करती है--

ओ३म् आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः।
तं रात्रीस्तिस्र उदरे बिभर्त्ति तं जातं द्रष्टुमभिसंयन्ति देवाः॥

—अथर्व० का० ११, सू० ५, मं० ३

अर्थ—(उपनयमानः आचार्यः) उपनयन संस्कार करता हुआ आचार्य (ब्रह्मचारिणम्) ब्रह्मचारी को (अन्तःगर्भम्) अपने भीतर गर्भ को माता के समान (कृणुते) धारण करता है। (तिस्रः रात्रीः) तीन रातों तक अर्थात् तीन दिन उसको (उदरे बिभर्ति) माता के समान अपने में धारता है। (जातम्) ब्रह्मचारी बनते हुए उसको (द्रष्टुम्) देखने के लिए (देवाः) देव कोटि के लोग भी (अभिसंयन्ति) चारों ओर से आते हैं।

भावार्थ—आचार्य ब्रह्मचारी को प्रतिज्ञापूर्वक समीप रखके तीन रात्रि पर्यन्त (संस्कारविधि महर्षि दयानन्दकृत) गृहाश्रम के प्रकरण में लिखे सन्ध्योपासनादि सत्पुरुषों के आचार की शिक्षा कर उसके आत्मा के भीतर गर्भरूप विद्या-स्थापना करने के लिए उसको धारण कर और उसको पूर्ण विद्वान् कर देता है, और जब वह पूर्ण ब्रह्मचर्य और विद्या को पूर्ण करके घर को आता है तब उसको देखने के लिए सब विद्वान् लोग सम्मुख जाकर बड़ा मान्य करते हैं॥

ओ३म् इयं समित् पृथिवी द्यौर्द्वितीयोतान्तरिक्षं समिधा पृणाति।
ब्रह्मचारी समिधा मेखलया श्रमेण लोकाँस्तपसा पिपर्ति॥

—अथर्व० कां० ११, सू० ५, मं० ४

अर्थ—(इयं पृथिवी) यह पृथिवी (समित्) ब्रह्मचारी की प्रथम समिधा है। (द्यौः द्वितीया) यह द्यौ दूसरी समिधा है (उत अन्तरिक्षम्) और अन्तरिक्ष तीसरी समिधा है। इन तीनों को ब्रह्मचारी (समिधा) अपने अग्नि में आहुति की गई समिधा अर्थात् आचार्यरूप अग्नि से प्रज्वलित अपने ज्ञानवान् आत्मा से (पृणाति) पालन और पूर्ण करता है (ब्रह्मचारी) ब्रह्मज्ञान में दीक्षित ब्रह्मचारी (समिधा) समित् आधान और (मेखलया) मेखला द्वारा (श्रमेण) श्रम द्वारा और (तपसा) तप द्वारा (लोकान्) समस्त मनुष्यों का (पिपर्ति) पालन करता है।

भावार्थ—जो यह ब्रह्मचारी वेदारम्भ के समय तीन समिधा अग्नि में होमकर ब्रह्मचर्य के व्रत को नियमपूर्वक सेवन करके विद्या पूर्ण करने को दृढोत्साही होता है, वह जानो पृथिवी, सूर्य और अन्तरिक्ष के सदृश पालन करता है, क्योंकि वह समिधादान, मेखलादि चिह्नों का धारण और परिश्रम से विद्या पूर्ण करके इस ब्रह्मचर्यनिष्ठारूप तप से सब लोगों को सद्गुण और आनन्द से तृप्त कर देता है॥

ओ३म् ब्रह्मचार्येति समिधा समिद्धः कार्ष्णं वसानो दीक्षितो दीर्घश्मश्रुः।
स सद्य एति पूर्वस्मादुत्तरं समुद्रं लोकान्संगृभ्य मुहुराचरिक्रत्॥

—अथर्व० कां० ११, सू० ५, मं० ६

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अर्थ—(ब्रह्मचारी) ब्रह्मचारी (समिधा) प्रज्वलित काष्ठ के समान देदीप्यमान तेज से (समिद्धः) भली प्रकार तेजस्वी होकर (कार्ष्णं वसानः) कृष्ण-मृग का चर्म धारण करता हुआ (दीक्षितः) व्रत में दीक्षित होकर (दीर्घश्मश्रुः) दाढ़ी-मूंछ के लम्बे केशों को रखे हुए (एति) जब गुरुगृह से आता है, तब (सः) वह (सद्यः) शीघ्र ही (पूर्वस्मात् समुद्रात् उत्तरं समुद्रम्) जिस प्रकार तेजस्वी सूर्य पूर्व के समुद्र या आकाश को पार करता हुआ समुद्र में या आगे के आकाश-भाग में प्रवेश करता है, उसी प्रकार वह भी पूर्वसमुद्र अर्थात् ब्रह्मचर्य को पारकर (उत्तरं समुद्रम्) उसके उपरान्त पालन करने योग्य गृहस्थ आश्रम को (मुहुः) बराबर (आचारिक्रत्) अपने वश करता है।

भावार्थ—जब विद्या से प्रकाशित और मृगचर्मादि धारण कर दीक्षित होके (दीर्घश्मश्रुः) चालीस वर्ष तक दाढ़ी-मूंछ आदि पञ्चकेशों का धारण करनेवाला ब्रह्मचारी होता है, वह पूर्वसमुद्ररूप ब्रह्मचर्यानुष्ठान को पूर्ण करके गुरुकुल से उत्तरसमुद्र अर्थात् गृहाश्रम को शीघ्र प्राप्त होता है। वह सब लोगों का संग्रह करके बारम्बार पुरुषार्थ और जगत् को सत्योपदेश से आनन्दित कर देता है॥

ओ३म् ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं वि रक्षति।
आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते॥

—अथर्व० कां० ११, सू० ५, मं० १७

अर्थ—(ब्रह्मचर्येण तपसा) ब्रह्मचर्यरूप तप से (राजा राष्ट्रम्) राजा राष्ट्र की (विरक्षति) नाना प्रकार से रक्षा करता है। आचार्य भी (ब्रह्मचर्येण) ब्रह्मचर्य के बल से ही (ब्रह्मचारिणम्) ब्रह्मचारी को (इच्छते) अपने अधीन व्रत-पालना कराना चाहता है।

भावार्थ—वही राजा उत्तम होता है, जो पूर्ण ब्रह्मचर्यरूप तपश्चरण से पूर्ण विद्वान् ब्रह्मचारी की इच्छा करता और वही आचार्य हो सकता है जो यथावत् ब्रह्मचर्य से सम्पूर्ण विद्याओं को पढ़ता है।

ओ३म् ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत।
इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वराभरत्॥

—अथर्व० कां० ११, सू० ५, मं० १९

अर्थ—(ब्रह्मचर्येण तपसा) ब्रह्मचर्य के तपोबल से (देवाः मृत्युम् अप+अघ्नत) देव, विद्वान् पुरुष मृत्यु का विनाश कर देते हैं, वे मृत्युञ्जय हो जाते हैं (इन्द्रः ह) निश्चय से इन्द्र ऐश्वर्यवान् राजा (ब्रह्मचर्येण) ब्रह्मचर्य के बल पर (देवेभ्यः) प्रजावासियों को अपने राष्ट्र में (स्वः आभरत्) स्वर्ग के समान सुख प्राप्त कराता है।

भावार्थ—विद्वान् लोग, समझदार लोग, अक्लमन्द आदमी ब्रह्मचर्य का पालन करके, तपस्वी जीवन बिताकर सादा भोजन, सादा वस्त्र, सादा चाल-चलन,

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

साहस, परिश्रम और उद्योगमय जीवन बिताकर मौत को दूर मार भगाते हैं, विजय पा लेते हैं, जीत लेते हैं। जीवात्मा निश्चयपूर्वक देवताओं से ब्रह्मचर्य के द्वारा शक्ति, तेज, आत्मबल चारों तरफ से, विविध प्रकार से तरह-तरह के साधनों द्वारा भर लेता है, प्राप्त कर लेता है।

ओ३म् ब्रह्मचारी ब्रह्म भ्राजद् बिभर्ति तस्मिन् देवा अधि विश्वे समोताः।
प्राणापानौ जनयन्नाद् व्यानं वाचं मनो हृदयं ब्रह्म मेधाम्॥

—अथर्व० कां० ११, सू० ५, मं० २४

अर्थ—(ब्रह्मचारी) ब्रह्मचारी पुरुष (भ्राजद् ब्रह्म बिभर्ति) अति प्रकाशमान ब्रह्म अर्थात् वीर्य और वेद को धारण करता है (तस्मिन्) उसमें ही (विश्वेदेवाः) समस्त इन्द्रियगण और उत्तम गुण (अधि सम्+ओताः) समाये हुए हैं। वह (प्राणापानौ) प्राण और अपान को और (आत्) अनन्तर (व्यानं वाचं मनः हृदयं ब्रह्म मेधाम्) व्यान अर्थात् व्यापक प्राण, वाणी, मन, हृदय, ब्रह्म और मेधाबुद्धि को (जनयन्) स्वयं अपने भीतर उत्पन्न करके धारण करता है।

भावार्थ—जब ब्रह्मचारी ब्रह्म अर्थात् सांगोपांग चारों वेदों को शब्द, अर्थ और सम्बन्ध के ज्ञानपूर्वक धारण करता है, तभी उस प्रकाशमान होता में सम्पूर्ण दिव्यगुण निवास करते और सब विद्वान् उससे मित्रता करते हैं। वह ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्य ही से प्राण, दीर्घजीवन, दुःख-क्लेशों का नाश, सम्पूर्ण विद्याओं में व्यापकता, उत्तम वाणी, पवित्र आत्मा, शुद्ध हृदय, परमात्मा और श्रेष्ठ प्रज्ञा को धारण करके सब मनुष्यों के हित के लिए सब विद्याओं का प्रकाश करता है।

ओ३म् मृत्योरहं ब्रह्मचारी यदस्मि निर्याचन् भूतात् पुरुषं यमाय।
तमहं ब्रह्मणा तपसा श्रमेणानयैनं मेखलया सिनामि॥

—अथर्व० कां० ६, सू० १३३, मं० ३

अर्थ—(अहम्) मैं (मृत्योः) आदित्य के समान प्रकाशवान् ज्ञानी पुरुष का, अज्ञान के बन्धन से मुक्त करनेवाले आचार्य का (ब्रह्मचारी) ब्रह्मचारी हूँ इसलिए (भूतात्) इस पञ्चभूत के बने देह से (यमाय) उस ब्रह्म सर्वनियन्ता परमेश्वर की प्राप्ति के लिए (पुरुषम्) देहपुरी के वासी आत्मा को (निर्याचन् अस्मि) मुक्त करने के यत्न में हूँ। हे आचार्य! ऐसे (तम्) उस (एनम्) इस आत्मा को (अहम्) मैं शिष्य (ब्रह्मणा) ब्रह्म, वेदोपदेश से (तपसा) तप से (श्रमेण) श्रम से और (अनया मेखलया) इस मेखला से (सिनामि) बाँधता हूँ।

भावार्थ—मैं मृत्यु का ब्रह्मचारी हूँ क्योंकि भूतमात्र से संयम के लिए पुरुषार्थ को माँग रहा हूँ। उसे मैं ज्ञान से, तप से तथा परिश्रम से लाकर इसको मेखला से बाँधता हूँ।

ब्रह्मचारी की महिमा अथर्ववेद के ११वें काण्ड पाँचवें सूक्त में विस्तार से वर्णित हुई है। अथर्ववेद ६।१३३ भी ब्रह्मचर्य-सम्बन्धी है। इसमें ब्रह्मचर्य के बहिरंग साधन मेखला=कौपीन धारण का माहात्म्य बताया गया है। इस मन्त्र

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

में जिस ब्रह्मचारी की चर्चा है, वह सभी ब्रह्मचारियों से विलक्षण है। यह है—मृत्योः·····ब्रह्मचारी—मौत का ब्रह्मचारी।

ब्रह्मचर्य—यह शब्द बड़ी लम्बी-चौड़ी व्याख्या चाहता है। क्या बालक, क्या जवान, क्या बूढ़ा, क्या गृहस्थी, क्या वानप्रस्थी, क्या संन्यासी, क्या प्रजा, क्या राजकर्मचारी, सबको ही वेद भगवान् ब्रह्मचारी बनने का आदेश देते हैं। किन्तु वे अपनी सुध आप लें। हमें तुमसे मतलब है—देश के भावी राम, कृष्ण, युधिष्ठिर, अर्जुन, भीम और बजरंगबलियों से सरोकार है। तुम सिर्फ इतना ही याद रखो कि तुम्हारा ब्रह्मचर्य उन सब साधनों को अपने में शामिल रखता है, जिससे तुम (ब्रह्म) बड़े, महान्, उत्तम, श्रेष्ठ (चारी) आचरणवाले बनते हो। यदि तुम खुली हवा में खेलते नहीं, दण्ड नहीं पेलते, कुश्ती नहीं लड़ते, कसरत 'व्यायाम' नहीं करते, शरीर को हृष्ट-पुष्ट बनाने के अन्य साधन काम में नहीं लाते तो तुम सच्चे अर्थों में बड़े नहीं बन रहे, ब्रह्मचारी नहीं हो, ब्रह्मचर्य का यथावत् पालन नहीं कर रहे, क्योंकि कमजोर कभी महान् नहीं बन सकता। यदि तुम स्वाध्याय नहीं करते, तन-मन से विद्या नहीं पढ़ते, अपने विज्ञान का खजाना नित्य नहीं बढ़ाते, तुम्हारे मस्तिष्क की, दिमाग की उन्नति नहीं होती, तो तुम कदापि ब्रह्मचारी नहीं, तुमसे ब्रह्मचर्य का पालन नहीं किया जा रहा, क्योंकि मूर्ख कहीं भी और कभी भी महान् नहीं समझे जाते।

अगर तुम्हारी अन्तरात्मा शुद्ध नहीं, यदि तुम प्रेम से शून्य हो, असहायों पर, दीन-दुःखियों पर दया नहीं करते, गुरुजनों से श्रद्धा, भक्ति और नम्रता के साथ व्यवहार नहीं करते, ईश्वर-भक्त नहीं हो तो तुम कदापि ब्रह्मचारी नहीं कहे जा सकते, क्योंकि जो इस दुनिया में बड़ा बनना चाहता है उसमें ये सब गुण होने आवश्यक हैं, ज़रूरी हैं। एक और बात बड़ी ज़रूरी है। तुम अभी बालक हो, तुम्हारे लिए दुनिया की सब बड़ी स्त्रियाँ माता के तुल्य हैं, और समस्त कन्याएँ, लड़कियाँ बहिनवत् हैं। यदि ऐसा स्वभाव बनाने का तुमने अभी से अभ्यास कर लिया, तो आगे चलकर तुम इस संसार की दुर्गम, भयंकर, डरावनी खाइयों को आसानी से पार कर जाओगे। तप से तुम शायद यह समझ जाओ कि ढोंगी साधुओं की तरह चारों तरफ आग की धूनी लगाकर बीच में बैठकर 'राम-राम' जपने को कहते हो। सो नहीं। यह तो ढोंग है, लोगों को धोखा देना है, ठगना है। तप के असली माने हैं सुख-दुःख, हानि-लाभ, भूख-प्यास, सर्दी-गर्मी आदि को प्रसन्न मन से आसानी के साथ सह लेना।

तुम्हें ब्राह्ममुहूर्त में प्रातः पाँच बजे से पहले उठना है! घण्टी बजी, आलस्य ने कहा—अरे मियाँ! थोड़ी देर और पड़े रहो, अभी से उठकर क्या करोगे? देखो न कैसी ठिरन पड़ रही है! बस रजाई के अन्दर सिर दबा लिया। तुम तपस्वी नहीं, ब्रह्मचारी नहीं। मृत्यु पर इस तरह विजय नहीं पाई जाती। इसके लिए तुममें

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

फुर्ती चाहिए, चुस्ती चाहिए, मुस्तैदी चाहिए और वे सब बातें चाहिएँ जिनसे तुम अपनी इन्द्रियों पर और सारे शरीर पर काबू पा सको। तभी तुम इन्द्रियपति, शचीपति, देवराज (मघवा), ऐश्वर्यसम्पन्न 'इन्द्र' कहला सकोगे, अमर हो जाओगे। शरीर चाहे न रहे, तुम्हारा नाम, तुम्हारा यश, तुम्हारी कीर्ति अमर हो जाएगी।

मानो तुमने मृत्यु को भी मार डाला, दूर भगा दिया। इस संसार में मरता वही है जिसे मरे पीछे कोई याद नहीं करता। सैकड़ों कुत्ते, सैकड़ों गधे, सैकड़ों नरपशु (मनुष्य के रूप में पशु) दिन-रात मरते हैं। किन्तु क्या कभी उनकी याद होती है? हाँ, यदि कुत्ता स्वामिभक्त है, रात को चौकसी अच्छी करता है, किसी परिन्दे को पर नहीं फटफटाने देता, ऐसे कुत्ते की भी याद की जाएगी। भार ढोने-वाले गधे के लिए भी कुम्हार रोएगा। किन्तु उन मनुष्यों के लिए क्या कहें, जो अपने पेट के सिवाय कुछ पढ़े ही नहीं, रुपये को अपना खुदा समझें और रुपये से जुदाई को प्राणत्याग?

बच्चो! तुमसे भारत-जननी ऐसी आशा नहीं रखती। तुम तो सच्चे आर्य-कुमार बनो, ऋषिकुमार बनो, राजकुमार बनो, सुशीलता धारण करो, नम्र बनो, अभिवादन-शील बनो, माता-पिता और गुरुजनों के भक्त बनो, धर्मशील बनो, बली बनो, मनीषी (विचारशील) बनो, और बनो वह सब-कुछ जिससे लोग तुम्हें (ब्रह्म) समझें, महान् समझें, श्रेष्ठ समझें। किन्तु मित्रो! समझेंगे तभी जब तुम ब्रह्मचर्य का पालन करोगे, तुम्हारा आचरण, तुम्हारा चाल-चलन, बड़े बनने-वालों का-सा होगा। तुम्हें लोग परखेंगे, सचाई की कसौटी पर कसेंगे। अगर असली कुन्दन निकले, हीरे और सच्चे हीरे निकले तो संसार के जौहरी तुम्हारा पूरा-पूरा मूल्य लगाएँगे और जहाँ भी जड़े जाओगे उसी आभूषण की शोभा बढ़ाओगे। जो तुम्हें प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त करेगा, वह भी बड़ा समझा जाएगा, तुम्हारा तो कहना ही क्या!

क्या अब भी इन शिक्षाओं पर ध्यान न दोगे? आशा तो यही है कि अवश्य दोगे।

भजन

बनो ब्रह्मचारी, बनो ब्रह्मचारी ॥ टेक ॥
बनोगे बली देह में शक्ति होगी,
तभी ईश की भी भली भक्ति होगी।
यही मुख्य शिक्षा सदा है हमारी ॥१॥ बनो……
इसी से तुम्हें तेज भारी मिलेगा,
इसी से कलेजा सभी का हिलेगा।
यही यत्न है लोक को लाभकारी ॥२॥ बनो……
इसी से सदा देश का लाभ होता,
यही रोग के सब जटिल जाल खोता।
इसी से दशा जा सकेगी सुधारी ॥३॥ बनो……
जभी देह बलवान् आरोग्य होगा।
तभी बुद्धि का भी भला योग होगा।
तभी योग्य सन्तान भी मानकारी ॥४॥ बना……

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

४. वेद में योग-विद्या

यजुर्वेद सप्तम अध्याय के आरम्भ में योग-सम्बन्धी अनेक मन्त्रों का उपदेश किया है। यहाँ उन्हीं में से चतुर्थ मन्त्र योगाभिलाषियों के लिए प्रस्तुत किया जाता है। उसमें योग के अंग, पाँच क्लेश और ऋद्धि-सिद्धियों का वर्णन है। आशा है पाठकगण लाभ उठायेंगे, वह मन्त्र इस प्रकार है—

उपयामगृहीतोऽस्यन्तर्य्यच्छ मघवन् पाहि सोमम्।
उरुष्य रायऽएषो यजस्व ।। —यजु० अध्याय ७, मन्त्र ४

इस मन्त्र पर महर्षि दयानन्द का अर्थ और भावार्थ—

अर्थ—हे योग के जिज्ञासु ! जिससे तू (उपयामगृहीतः) यमों को ग्रहण करने-वाले के तुल्य (असि) है, इसलिए (अन्तः) अन्दर विद्यमान प्राण आदि का (यच्छ) निग्रह कर। हे (मघवन्) परमपूज्य धनी के समान ! तू (सोमम्) योगसिद्ध ऐश्वर्य की (पाहि) रक्षा कर, (उरुष्य) अत्यन्त योगाभ्यास से अविद्या आदि क्लेशों का अन्त कर तथा (रायः) ऋद्धि-सिद्धिरूप धनों और (इषः) इच्छा-सिद्धियों को (आ-यजस्व) सब ओर से सिद्ध कर।

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है। योग का जिज्ञासु यम आदि योग के अंगों से चित्त आदि का निरोध करके, अविद्या आदि दोषों को हटाकर संयम से ऋद्धि-सिद्धियों को प्राप्त करे।

मन्त्र में पठित साधनों तथा विभूतियों की व्याख्या—

योग के अङ्ग—

यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि ।।
—योगादर्शन, पाद २, सूत्र २९

एक (यम), दूसरा (नियम), तीसरा (आसन), चौथा (प्राणायाम), पाँचवाँ (प्रत्याहार), छठा (धारणा), सातवाँ (ध्यान) और आठवाँ (समाधि) ये सब उपासनायोग के अङ्ग कहाते हैं और आठ अंगों का सिद्धान्तरूप फल संयम है।

तत्राहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः। —पाद २, सू० ३०

उन आठों में से पहला 'यम' है। सो पाँच प्रकार का है—एक (अहिंसा) अर्थात् सब प्रकार से सब काल में, सब प्राणियों के साथ वैर छोड़के प्रेम-प्रीति से

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वर्तना। दूसरा (सत्य) अर्थात् जैसा अपने ज्ञान में हो, वैसा ही सत्य बोले, करे और माने। तीसरा (अस्तेय) अर्थात् पदार्थवाले की आज्ञा के बिना किसी पदार्थ की इच्छा भी न करना, इसी को चोरीत्याग कहते हैं। चौथा (ब्रह्मचर्य) अर्थात् विद्या पढ़ने के लिए बाल्यावस्था से लेकर सर्वथा जितेन्द्रिय होना, और पच्चीसवें वर्ष से लेके अड़तालीस वर्ष-पर्यन्त विवाह के समय में विवाह करना, परस्त्री, वेश्या आदि का त्यागना, सदा ऋतुगामी होना, विद्या को ठीक-ठीक पढ़के सदा पढ़ाते रहना, और उपस्थ-इन्द्रिय का सदा नियमन करना। पाँचवाँ (अपरिग्रह) अर्थात् विषय और अभिमानादि दोषों से रहित होना। इन पाँचों का ठीक-ठाक अनुष्ठान करने से उपासना का बीज बोया जाता है।

दूसरा अङ्ग उपासना का 'नियम' है जो कि पांच प्रकार का है—

ते तु शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः।।

—योग० पाद २, सू० ३२

पहिला (शौच) अर्थात् पवित्रता करनी, सो भी दो प्रकार की है—एक भीतर की, और दूसरी बाहर की। भीतर की शुद्धि धर्माचरण, सत्यभाषण, विद्याभ्यास, सत्संग आदि शुभगुणों के आचरण से होती है और बाहर की पवित्रता जल आदि से शरीर, स्थान, मार्ग, वस्त्र, खाना-पीना आदि शुद्ध करने से होती है। दूसरा (सन्तोष) जो सदा धर्मानुष्ठान से अत्यन्त पुरुषार्थ करके प्रसन्न रहना और दुःख में शोकातुर न होना। किन्तु आलस्य का नाम सन्तोष नहीं है। तीसरा (तपः) जैसे सोने को अग्नि में तपाके निर्मल कर देते हैं, वैसे ही आत्मा और मन को धर्माचरण और शुभगुणों के आचरणरूप तप से निर्मल कर देना। चौथा (स्वाध्याय) अर्थात् मोक्षविद्या-विधायक वेद-शास्त्र का पढ़ना-पढ़ाना और ओंकार के विचार से ईश्वर का निश्चय करना-कराना और पाँचवाँ (ईश्वर-प्रणिधान) अर्थात् सब सामर्थ्य, सब गुण, प्राण, आत्मा और मन का प्रेमभाव से आत्मादि सब द्रव्यों का ईश्वर के लिए समर्पण करना। ये पाँच नियम भी उपासना का दूसरा अंग है।

तीसरा अंग—**स्थिरसुखमासनम्।।** —यो० पा० २, सूत्र ४६

अर्थात् जिसमें सुखपूर्वक शरीर और आत्मा स्थिर हो उसको आसन कहते हैं अथवा जैसी रुचि हो वैसा करें।

चौथा अंग—**तस्मिन्सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः।।**

—यो० पा० २, सू० ४९

जो वायु बाहर से भीतर को आता है उसको 'श्वास' और जो भीतर से बाहर जाता है उसको 'प्रश्वास' कहते हैं। उन दोनों के जाने-आने को विचार से रोके। नासिका को हाथ से कभी न पकड़े, किन्तु ज्ञान से ही उनको रोकने को प्राणायाम कहते हैं।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पाँचवाँ अंग—**स्वविषयासंप्रयोगे चित्तस्य स्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः ।।** —यो पा० २, सू० ५९

'प्रत्याहार' उसका नाम है कि जब पुरुष अपने मन को जीत लेते हैं तब इन्द्रियों का जीतना अपने-आप हो जाता है, क्योंकि मन ही इन्द्रियों का चलाने-वाला है।

छठा अंग—**देशबन्धश्चित्तस्य धारणा ।।** —योग० ३, सू० १

जब उपासनायोग के पूर्वोक्त पाँचों अङ्ग सिद्ध हो जाते हैं, तब उसका छठा अंग धारणा भी यथावत् प्राप्त होती है। 'धारणा' उसको कहते हैं कि मन को चंचलता से छुड़ा के नाभि, हृदय, मस्तक, नासिका और जीभ के अग्रभाग आदि देशों में स्थिर करके ओंकार का जप और उसका अर्थ जो परमेश्वर है उसका विचार करना।

सातवाँ अंग—**तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम् ।।** —यो० पा० ३, सू० २

धारणा के पीछे उसी देश में ध्यान करने और आश्रय लेने के योग्य जो अन्तर्यामी व्यापक परमेश्वर है, उसके प्रकाश और आनन्द में, अत्यन्त विचार और प्रेम-भक्ति के साथ इस प्रकार प्रवेश करना कि जैसे समुद्र के बीच में नदी प्रवेश करती है। इस समय में ईश्वर को छोड़ किसी अन्य पदार्थ का स्मरण नहीं करना, किन्तु उसी अन्तर्यामी के स्वरूप और ज्ञान में मग्न हो जाना है, इसका नाम ध्यान है।

आठवाँ अंग—**तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः ।।**

—यो० पा० ३, सू० १३

इन सात अंगों का फल समाधि है—जैसे अग्नि के बीच में लोहा भी अग्नि-रूप हो जाता है, इसी प्रकार परमेश्वर के ज्ञान में प्रकाशमय अपने शरीर को भी भूले हुए के समान जानके आत्मा को परमेश्वर के प्रकाशस्वरूप आनन्द और ज्ञान से परिपूर्ण करने को 'समाधि' कहते हैं। ध्यान और समाधि में इतना ही भेद है कि ध्यान में तो ध्यान करनेवाला, जिस मन से, जिस चीज़ का ध्यान करता है, वे तीनों विद्यमान रहते हैं, परन्तु समाधि में केवल परमेश्वर ही के आनन्दस्वरूप ज्ञान में आत्मा मग्न हो जाता है। वहाँ तीनों का भेदभाव नहीं रहता। जैसे मनुष्य जल में डुबकी मारके थोड़ा समय भीतर ही रुका रहता है, वैसे ही जीवात्मा परमेश्वर के बीच में मग्न होके फिर बाहर को आ जाता है।

त्रयमेकत्र संयमः ।। —यो० पा० ३, सू० ४३

जिस देश में धारणा की जाए, उसी में ध्यान और उसी में समाधि अर्थात् ध्यान करने के योग्य परमेश्वर में मग्न हो जाने को संयम कहते हैं, जो एक ही काल में तीनों का मेल होना है, अर्थात् धारणा से संयुक्त ध्यान, और ध्यान से संयुक्त समाधि होती है, उनमें बहुत सूक्ष्मकाल का भेद रहता है। परन्तु जब

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

समाधि होती है, तब आनन्द के बीच तीनों का फल एक ही हो जाता है।

(महर्षि दयानन्दकृत 'ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका' उपासना विषय से उद्धृत)

पाँच क्लेश = अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः पञ्च क्लेशाः ।।

—यो० पा० २, सू० ३

एक अविद्या, दूसरा अस्मिता, तीसरा राग, चौथा द्वेष और पाँचवाँ अभिनिवेश, ये पाँच क्लेश कहाते हैं।

अविद्याक्षेत्रमुत्तरेषां प्रसुप्ततनुविच्छिन्नोदाराणाम् ।।—यो० पा० २, सू० ४

उनमें से अस्मितादि चार क्लेशों और मिथ्याभाषणादि दोषों की भूमि अविद्या है, जो कि मूढ जीवों को अन्धकार में फँसाके जन्म-मरणादि दुःख-सागर में सदा डुबाती है, परन्तु जब विद्वान् और धर्मात्मा उपासकों की सत्यविद्या से अविद्या विच्छिन अर्थात् छिन्न-भिन्न होके प्रसुप्ततनु = नष्ट हो जाती है, तब वे जीव मुक्ति को प्राप्त हो जाते हैं।

अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या ।।

—यो० पा० २, सू० ५८

अविद्या के लक्षण ये हैं—अनित्य अर्थात् कार्य (जो शरीर आदि स्थूल तथा लोक-लोकान्तर) में नित्यबुद्धि तथा जो नित्य अर्थात् ईश्वर, जीव, जगत् का कारण, क्रिया-क्रियावान्, गुण-गुणी और धर्म-धर्मी हैं, इन नित्य पदार्थों का परस्पर सम्बन्ध है, इनमें अनित्य बुद्धि का होना, यह अविद्या का प्रथम भाग है। तथा 'अशुचि' मलमूत्रादि के समुदाय दुर्गन्धरूप मल से परिपूर्ण शरीर में पवित्र बुद्धि का करना तथा तालाब, बावरी, कुण्ड, कुआँ और नदी आदि में तीर्थ और पाप छुड़ाने की बुद्धि का करना और उनका चरणामृत पीना, एकादशी आदि मिथ्या-व्रतों में भूख-प्यास आदि दुःखों का सहना, स्पर्श-इन्द्रिय के भोगों में अत्यन्त प्रीति करना इत्यादि अशुद्ध पदार्थों को शुद्ध मानना और सत्यविद्या, सत्यभाषण, धर्म, सत्संग, परमेश्वर की उपासना, जितेन्द्रियता, सर्वोपकार करना, सबसे प्रेमभाव से वर्तना आदि शुद्ध व्यवहार और पदार्थों में अपवित्र बुद्धि करना, यह अविद्या का दूसरा भाग है। तथा दुःख में सुखबुद्धि अर्थात् विषय-तृष्णा, काम, क्रोध, लोभ, मोह, शोक, ईर्ष्या, द्वेष आदि दुःखरूप व्यवहारों से सुख मिलने की आशा करना, जितेन्द्रियता, निष्काम, शम, सन्तोष, विवेक, प्रसन्नता, प्रेम, मित्रता आदि सुख-रूप व्यवहारों में दुःखबुद्धि का करना, यही अविद्या का तीसरा भाग है। इसी प्रकार अनात्मा में आत्मबुद्धि अर्थात् जड़ में चेतनभाव और चेतन में जड़भाव करना, अविद्या का चतुर्थ भाग है। यह चार प्रकार की 'अविद्या' संसार के अज्ञानी जीवों को बन्धन में बाँधती है। जब विद्या से अविद्या की निवृत्ति होती है तब बन्धन से छूटके जीव मुक्ति को प्राप्त होता है।

दृग्दर्शनशक्त्योरेकात्मतेवास्मिता ।। —यो० पा० २, सू० ६

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

दूसरा क्लेश अस्मिता कहाता है अर्थात् जीव और बुद्धि को एकसमान देखना, अभिमान और अहंकार से अपने को बड़ा समझना इत्यादि व्यवहार को 'अस्मिता' जानना। जब सम्यक् विज्ञान से अभिमान आदि के नाश होने से इसकी निवृत्ति होती जाती है तब गुणों के ग्रहण में रुचि होती है। तीसरा—

सुखानुशयी रागः ।। —यो० पा० २, सू० ७

राग अर्थात् जो-जो सुख संसार में साक्षात् भोगने में आते हैं, उनके संस्कार की स्मृति से जो-जो तृष्णा के लोभसागर में बहना है उसका नाम राग है। जब ऐसा ज्ञान मनुष्य को होता है कि सब संयोग वियोगान्त है अर्थात् वियोग के अन्त में संयोग और संयोग के अन्त में वियोग तथा वृद्धि के अन्त में क्षय और क्षय के अन्त में वृद्धि होती है, तब इसकी निवृत्ति हो जाती है।

दुःखानुशयी द्वेषः ।। —यो० पा० २, सू० ८

चौथा 'द्वेष' कहाता है अर्थात् जिस अर्थ का अनुभव किया गया हो, उसपर और उसके साधनों पर सदा क्रोधबुद्धि होना। इसकी निवृत्ति भी राग की निवृत्ति से होती है।

स्वरसवाही विदुषोऽपि तथा रूढोऽभिनिवेशः ।।

—यो० पा० २, सू० ९

पाँचवाँ 'अभिनिवेश' क्लेश है, जो प्राणियों को नित्य आशा होती है कि हम सदैव शरीर के साथ बने रहें, अर्थात् कभी मरें नहीं, सो पूर्वजन्म से होती है और इससे पूर्वजन्म भी सिद्ध होता है, क्योंकि छोटे-छोटे कृमि, चींटी आदि जीवों को भी मरण का भय बराबर बना रहता है। इसी से इस क्लेश को अभिनिवेश क्लेश कहते हैं जो कि विद्वान्, मूर्ख तथा क्षुद्र जन्तुओं में बराबर दीख पड़ता है। इस क्लेश की निवृत्ति उस समय होगी कि जब जीव, परमेश्वर और प्रकृति अर्थात् जगत् के कारण को नित्य और कार्यद्रव्य के संयोग-वियोग को अनित्य जान लेगा। इन क्लेशों की शान्ति से जीवों को मोक्षसुख की प्राप्ति होती है।

('ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' से)

आठ ऋद्धियाँ—

ततोऽणिमादिप्रादुर्भावः कायसंपत्तद्धर्मानभिघातश्च ।। —यो० ३।४५

इस सूत्र पर व्यासभाष्य: १—तत्राणिमा भवत्यणुः। २—लघिमा लघुर्भवति। ३—महिमा महान्भवति। ४—प्राप्तिरङ्गुल्यग्रेणापि स्पृशति चन्द्रमसम्। ५—प्राकाम्यमिच्छानभिघातः। भूमावुन्मज्जति निमज्जति यथोदके। ६—वशित्वं भूतभौतिक वशी भवत्यवश्यश्चान्येषाम्। ७—ईशितृत्वं तेषां प्रभवाप्ययव्यूहानामीष्टे। ८—यत्रकामावसायित्वं सत्यसंकल्पता यथा संकल्पस्तथा भूतप्रकृतीनामवस्थानम्। न च शक्तोऽपि पदार्थविपर्यासं करोति। कस्मात्। अन्यस्य यत्र

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

कामावसायिनः पूर्वसिद्धस्य तथाभूतेषु संकल्पादिति। एतान्याष्टावैश्वर्याणि ॥

अर्थ—१—उनमें 'अणिमा' सिद्धि वह है जिसमें योगी अपने शरीर को सूक्ष्म कर लेता है। २—हल्का हो जाने से 'लघिमा' सिद्धि कहलाती है। ३—जब योगी अपने शरीर को महान् कर लेता है तब 'महिमा' सिद्धि कहलाती है। ४—'प्राप्ति' सिद्धि वह है जिसमें योगी चन्द्रमा को हाथ से स्पर्श करता है। ५—इच्छा का पूर्ण होना 'प्राकाम्य' सिद्धि कहलाती है, भूमि में डूब जाता और निकल आता है जिस प्रकार जल में। ६—भूत-प्राणी और सर्वभौतिक पदार्थ योगी के वश में हो जाते हैं और योगी किसी के वश में नहीं रहता, इस सिद्धि को 'वशित्व' कहते हैं। ७—उन भूत-भौतिकों के उत्पत्ति-विनाश की सामर्थ्य होना 'ईशित्त्व' सिद्धि कहलाती है। ८—योगी जो संकल्प करे वह पूरा होना अर्थात् जैसा योगी का संकल्प उसके अनुसार भूत और प्रकृति का रहना, 'यत्रकामावसायित्व' सिद्धि कहलाती है। परन्तु योगी समर्थ होता हुआ भी पदार्थों को ईश्वर-रचना से विपरीत नहीं करता। क्योंकि दूसरे प्राणियों के पूर्वसिद्ध प्रारब्ध कर्मानुसार भूतों को भोग ईश्वर के नियम के अनुसार प्राप्त है, इस कारण सिद्धयोगी ईश्वर आज्ञा-भंग नहीं करता। ये आठ ऐश्वर्य हैं।

सांख्य में आठ सिद्धियाँ

ऊहादिभिः सिद्धिरष्टधा ॥ —सांख्य० ३।४४

ऊह आदि भेद से सिद्धियाँ आठ हैं। १—ऊह (तार) जैसे "कोई नित्य तर्क करता है कि इसमें क्या सत्य है? क्या असत्य है? क्या निश्रेयस् है? और क्या करके मैं कृदार्थ हो जाऊँगा? ऐसा विचार करते-करते उसे ज्ञान हो जाता है कि पुरुष प्रधान से भिन्न है, अहंकार भी इससे पृथक् है, तन्मात्राएँ और इन्द्रियाँ भी इससे भिन्न हैं, पंच महाभूत भी इससे भिन्न ही हैं, इस प्रकार इसे तत्त्वज्ञान होता है, जिससे मोक्ष हो जाता है। यही 'ऊह' नाम की प्रथम सिद्धि है। २—शब्द (सुतार) शब्दज्ञान से जो प्रकृति, पुरुष, बुद्धि, अहंकार, तन्मात्रा, इन्द्रिय और पञ्चमहाभूत-विषयक ज्ञान होता है और उससे मोक्ष होता है, यह 'शब्द' नाम की दूसरी सिद्धि है। ३—अध्ययन (तारतार) अध्ययन से अर्थात् गुरुमुख से वेदादि शास्त्रों का अध्ययन करके २५ तत्त्वों का ज्ञान होने से जो मोक्ष होता है वह 'अध्ययन' नाम की तीसरी सिद्धि है। ४—आध्यात्मिक दुःखों का विघात 'प्रमोद'। ५—आधिभौतिक दुःखों का विघात 'मुदित'। ६—आधिदैविक दुःखों का विघात 'मोदमान'। आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक इन तीनों प्रकार के दुःख का नाश करने के लिए गुरु के पास जाकर उसके उपदेश से जो मोक्षप्राप्ति होती है, वह चौथी सिद्धि है। चूँकि दुःख तीन हैं जिनके विनाश से यह सिद्धि होती हैं इसलिए यह भी तीन प्रकार की मानी जाती है। पूर्वोक्त तीन सिद्धियों को

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मिलाकर ये ६ सिद्धियाँ हुईं। ७—'सुहृत्प्राप्ति' (रम्यक) कोई-कोई ज्ञानी मित्र की प्राप्ति से भी तत्त्वज्ञान कर लेता है, यह सातवीं सिद्धि है। ८—'दान' (सदामुदित) कोई तत्त्वज्ञानियों को आश्रय, ओपधि, दण्ड, कमण्डलु, भोजनाच्छादन आदि देकर बदले में उनसे तत्त्वज्ञान प्राप्तकर मोक्ष प्राप्त करता है, यह आठवीं सिद्धि है।

प्रस्तुत मन्त्र में उपमावाचक 'इव' शब्द लुप्त होने से वाचकलुप्तोपमा अलंकार है। उपमा यह है कि योग का जिज्ञासु पुरुष यम आदि योग के अंगों से चित्तवृत्ति का निरोध करनेवाले योगी के समान बने तथा जैसे धनवान् पुरुष पूज्य होता है वैसे योगसिद्धिरूप धन से सम्पन्न योगी भी लोक में परमपूज्य बने। प्रत्येक मन्त्र अपना महत्त्व रखता है, अतः हमें अन्वेषण-कार्य में तत्पर रहना चाहिए।

गीत

यम नियमों को धार ध्यान लगाये जा।
ईश मिलन की राह को अपनाये जा॥

यम नियम अहिंसा आदि, ये योग के अंग इत्यादि।
सकल निभाये जा॥१॥

एकान्त देश में जाकर, आसन कर सिद्ध जमाकर।
कष्ट उठाए जा॥२॥

नित प्राणायाम चढ़ाकर, युक्ति से बन्ध लगाकर।
काल बढ़ाये जा॥३॥

मन पर अधिकार जमेगा, तो प्रत्याहार बनेगा।
विजय दिलायेगा॥४॥

धारणा ध्यान पर चढ़के, साधक बन आगे बढ़के।
समाधि लगाये जा॥५॥

सानन्द समाधि पाकर, जीवन यह मुक्त बनाकर।
ओम् पद पाये जा॥६॥

□

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

५. वेद में यज्ञ-महिमा

"यज्ञो वै विष्णुः।"—(शतपथ)—यज्ञ नाम विष्णु का है और विष्णु नाम ईश्वर का है। "वेवेष्टि व्याप्नोति चराचरं जगत् सर्वमिति विष्णुरीश्वरः"—जो चराचर—जड़-चेतन समस्त जगत् में व्यापक होकर सबकी रक्षा करता है—वह 'विष्णु' पदवाच्य 'ईश्वर' है। उस यज्ञरूप ईश्वर से ही चारों वेदों का प्रकाश भी हुआ है। अतएव यह कहा गया है कि "वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।" इसको ही आर्ष वैदिक परिभाषा में 'यज्ञ' भी कहा गया है। 'यज्ञ' के महत्त्व का आगे वेद-मन्त्र से वर्णन करेंगे—

मा भेर्मा संविक्थाऽअतमेरुर्यज्ञोऽतमेरुर्यजमानस्य प्रजा भूयात्।
त्रिताय त्वा द्विताय त्वैकताय त्वा॥

—यजुर्वेद अध्याय १, मन्त्र २३

अर्थ—हे विद्वान् पुरुष! तू (अतमेरु) आलस्य-रहित यज्ञ करनेवाला बनकर (यजमानस्य) यज्ञ करनेवाले यजमान के यज्ञानुष्ठान से (मा भेः) मत डर और इस यज्ञानुष्ठान से (मा संविक्थाः) विचलित मत हो।

इस प्रकार (यज्ञम्) यज्ञ करनेवाले आपकी (अतमेरुः) सदा यज्ञ करनेवाली (प्रजा) उत्तम सन्तानवाली प्रजा, (भूयात्) हो।

मैं (त्वा) उस अग्नि को यज्ञ के लिए अर्थात् (त्रिताय) अग्नि, कर्म और हवि इन तीनों के लिए (द्विताय) वायु और वर्षाजल की शुद्धि इन दोनों के लिए (एकताय) और एक सुख के लिए (संयौमि) स्थापित करता हूँ।

भावार्थ—ईश्वर प्रत्येक मनुष्य को आज्ञा देता है कि किसी मनुष्य को यज्ञ, सत्याचार और विद्याग्रहण में डरना वा विचलित नहीं होना चाहिए, क्योंकि—तुम इन्हीं शुभकर्मों से उत्तम सन्तान, शारीरिक, वाचिक और मानसिक स्थिर सुखों को प्राप्त कर सकते हो।

यज्ञविषयक कुछ प्रश्नोत्तर—

प्रश्न—यज्ञ क्या है?

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

उत्तर—देवपूजा, संगतिकरण तथा दान यज्ञ है। देवों की, दिव्य गुणवालों की पूजा, देनेवालों की पूजा, तेजस्वियों की पूजा, प्रकाशकों की पूजा देवपूजा है। यथायोग्य उपकार-ग्रहण और व्यवहार का नाम पूजा है। संगतिकरण—सं—गति—विगतिक पदार्थों को संगतिवाला करना, उलटी चालवालों को सुलटी चाल पर ले-आना, विरुद्ध दिशा में गति करने को अविरुद्धगतिक बनाना, विविध चाल-वालों को एक चालवाला बनाना संगतिकरण है। अपने पदार्थ पर से अपना स्वत्व—अधिकार छोड़कर पराये अधिकार में उसे दे डालना दान है—यह सब मिलकर यज्ञ है।

प्रश्न—यज्ञ में घृत तथा सामग्री डालने का क्या प्रयोजन है ?

उत्तर—यज्ञ में अग्नि, समिधा, घृत और हवि आवश्यक हैं। अग्नि में समिधा डालकर, उसे प्रदीप्त करके घृत तथा हवि के द्वारा जहाँ उस अग्नि को प्रदीप्त करना होता है, यहाँ घृत और हवि अग्नि में पड़कर अधिक उपयोगी हो जाते हैं। हवि: अग्नि में पड़ने से पूर्व कोई विशेष सुगन्ध नहीं देता, अग्नि में पड़कर वह सुगन्ध देने लगता है, और अग्नि वायु की सहायता से उस सुगन्ध का प्रसार करके जहाँ-जहाँ वह सुगन्ध पहुँचता है वहाँ-वहाँ दुर्गन्ध को दूर करके वायुशुद्धि आदि का कार्य करता है। यही अवस्था घृत की है। यह एक वैज्ञानिक सचाई है, जिसका अपलाप नहीं किया जा सकता। इस प्रकार के यज्ञों को द्रव्ययज्ञ अथवा हविर्यज्ञ कहते हैं। इन द्रव्ययज्ञों से वायु आदि द्रव्यों की शुद्धि के साथ अन्त:करण की शुद्धि भी थोड़ी-बहुत हो जाती है, क्योंकि इस प्रकार के यज्ञों से परोपकार अवश्य होता है।

प्रश्न—क्या यज्ञ में मन्त्र बोलने की आवश्यकता है ?

उत्तर—भगवान् की आराधना के लिए सबसे प्रथम उसके गुण-ज्ञान की आवश्यकता है। भगवान् का यथार्थ गुण-ज्ञान भगवान् के अतिरिक्त और कौन करा सकता है ? भगवान् जीवों के उद्धारार्थ, जीवों के भोग और मोक्ष के सकल साधनों का उपदेश सृष्टि के आरम्भ में वेद के रूप में देता है। भगवान् की आराधना का एक साधन यज्ञ भी है, जैसाकि वेद में लिखा है—**'यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः'** ।। यजु० ३१। १६।।—विद्वान् लोग यज्ञ के द्वारा पूजनीय भगवान् की पूजा करते हैं। इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि यज्ञ भी पूजन का अन्यतम साधन है। ब्राह्मणग्रन्थों में आता है कि यज्ञ में मानुषी वाणी का व्यवहार नहीं करना चाहिए। यही बात यजुर्वेद ३।११ में कही है—**'उप प्रयन्तो अध्वरं मन्त्रं वोचेमाग्नये'**। —सर्वाग्रणी भगवान् के प्रति यज्ञ को प्राप्त करते हुए मन्त्र—वेद-मन्त्र बोलें। यज्ञ शब्द से ब्रह्मयज्ञ आदि सभी अभिप्रेत हैं, अत: सन्ध्या आदि सभी यज्ञों में मन्त्रों से ही कार्य करना चाहिए।

प्रश्न—यज्ञ को अध्वर भी कहते हैं, इसका क्या प्रयोजन है ?

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

उत्तर—यज्ञ के अध्वर, मख आदि कई नाम हैं। अध्वर शब्द पर यास्काचार्य जी निरुक्त में लिखते हैं **'ध्वरति हिंसाकर्मा तत्प्रतिषेधः'** अध्वर—दो शब्द हैं—अ (न)+ध्वर। ध्वर का अर्थ है हिंसा। अध्वर का अर्थ है—न हिंसा—अहिंसा। भाव यह हुआ कि अध्वर उन कर्मों का नाम है जिनमें हिंसा न हो, अथवा हिंसा का निषेध किया जाता हो। यज्ञ में हिंसा माननेवालों का खण्डन तो इस अध्वर शब्द से ही हो जाता है। अध्वर का दूसरा अर्थ भी है—अध्व+र=मार्ग देना, मार्ग दिखलाना। यज्ञ का अर्थ है संगतिकरण—सत्संगति। उस अर्थ को अध्वर—मार्ग दिखलाने के साथ मिलावें तो अध्वर—यज्ञ का थोड़ा-सा भाव स्पष्ट हो जाता है।

प्रश्न—यज्ञ करनेवालों का कार्य क्या होता है?

उत्तर—ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, बलिवैश्वदेवयज्ञ, राजसूय, वाजपेय, अग्निष्टोम, ज्योतिष्टोम आदि अनेक प्रकार के यज्ञ हैं। सबमें भिन्न प्रकार की सामग्री का प्रयोग होता है। राजसूय आदि यज्ञ प्रायः सभी सकाम कर्म हैं। जैसा कि लिखा है 'राजा राजसूयेन यजेत स्वराज्यकामः'—स्वराज्य का अभिलाषी राजसूय यज्ञ करे। किन्तु विद्वान् जिन्होंने सब-कुछ जान लिया है, जिन्हें संसार की असारता का बोध हो चुका है ऐसे **'मुग्धा देवा उत शुना यजन्त'**। अथर्ववेद ७।५।५—मोह लेनेवाले विद्वान् भगवान् का यज्ञ करते हैं। सचमुच जो संसार की असारता के कारण इससे ऊपर उठ गये हैं, उनमें कोई विशेष चमत्कार होता है। दूसरों को वे अपने वश में कर लेते हैं। इनके इस गुण का हेतु है भगवद्-भजन तथा भगवद्वाणी का प्रवचन। भगवान् का ध्यान तथा भगवान् का व्याख्यान इनका प्रधान कार्य होता है।

प्रश्न—यज्ञानुष्ठान का फल क्या है?

उत्तर—ऋग्वेद ७।२१।२ में यज्ञानुष्ठान का फल बताया है। उससे यज्ञ का स्वरूप थोड़ा-सा समझा जा सकता है, अतः उस मन्त्र को यहाँ उद्धृत करते हैं—

प्र यन्ति यज्ञं विपयन्ति बर्हिः, सोममादो विदथे दुध्रवाचः।
न्यु ध्रियन्ते यशसो गृभादा, दूर उपब्दो वृषणो नृषाचः॥

जो लोग उत्तमता से यज्ञानुष्ठान करते हैं, वे हृदयाकाश में विशेषरूप से पहुँचते हैं, सोमरस से सदा मदमाते रहकर विदथे—शास्त्र-संग्राम में वे धर्षक वाणीवाले होते हैं (अर्थात् उनके आगे सबकी बोलती बन्द हो जाती है), वे सचमुच कीर्ति के घर से लाये जाते हैं। उनकी वाणी दूर तक जाती है, वे सुखवर्षक तथा लोकसंग्राहक होते हैं। यज्ञानुष्ठान करनेवालों की प्रत्यभिज्ञान—पहचान इस मन्त्र में बताई गई है—(१) हृदयाकाश में विशेष रूप से पहुँचते हैं अर्थात् वे विवेकी, विचारी तथा धारणा-ध्यान के धनी होते हैं। (२) इस कारण वे शान्ति-रस से सदा मस्त रहते हैं; योगी से अधिक शान्ति किसको मिल सकती है? (३) और

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

इसी कारण उनकी वाणी में बड़ी शक्ति रहती है, उनकी वाणी से सभी को दबना पड़ता है, मौन होना पड़ता है। (४) और इसी से उनकी महती कीर्ति होती है, मानो वे साक्षात् कीर्तिगृह से लाये जाते हैं। (५) उनकी वाणी दूर तक जाती है अर्थात् उनके उपदेश-आदेश का प्रभाव दूर तक पहुँचता है। (६) वे महाबली होते हैं और सबपर सुख की वृष्टि करते हैं। और (७) इन गुणों के जो नृषाच—जन-साधारण मिलते-जुलते हैं उन सबको अपना सहायक, सहयोगी, सहकारी बना लेते हैं अर्थात् यज्ञ का अर्थ हुआ लोकसंग्रह। लोकविग्रह यज्ञ नहीं हो सकता।

'यज्ञ' शब्द बहुत व्यापक अर्थोंवाला है। संक्षेप में कहना हो तो कह सकते हैं, लोकोपकारक सभी शुभकर्म यज्ञ हैं। सकाम, निष्काम, नित्य, नैमित्तिक सभी कर्म यदि मन और हृदय को शुद्ध करते हैं, तो ये सार्थक हैं और यज्ञ हैं। यज्ञ—शुभ कर्मों का फल अन्तःकरण की शुद्धि है। इसीलिए कहा है 'ते वो हृदे मनसे सन्तु यज्ञाः'। ऋग्वेद ४।३७।२ —वे सब हृदय और मन के लिए यज्ञ हों। शुभकर्म बेपरवाही और अनास्था से नहीं करने चाहिएँ, अपितु अति प्रीति, श्रद्धा एवं आस्था से करने चाहिएँ।

महर्षि दयानन्दजी की होम अर्थात् अग्निहोत्र के विषय में शिक्षा—

होम की सामग्री—"होम के द्रव्य चार प्रकार के हैं—(प्रथम सुगन्धित) कस्तूरी, केसर, अगर, तगर, श्वेत चन्दन, इलायची, जावित्री आदि। (द्वितीय पुष्टिकारक) घृत, दुग्ध, फल, कन्द, अन्न, चावल, गेहूँ, उड़द आदि। (तीसरे मिष्ट) शक्कर, शहद, छुवारे, दाख आदि। (चौथे रोगनाशक) सोमलता अर्थात् गिलोय आदि ओषधियाँ।" —संस्कारविधि, सामान्य प्रकरण

होम-समिधा—"पलाश, शमी, पीपल, बड़, गूलर, आम, बिल्व आदि की समिधा, वेदी के प्रमाणे छोटी-बड़ी कटवा लेवें। परन्तु यह समिधा कीड़े-लगी, मलीन-देशोत्पन्न और अपवित्र पदार्थ आदि से दूषित न हो।"

अग्निहोत्र का समय—"सूर्योदय के पश्चात् और सूर्यास्त के पूर्व अग्निहोत्र का समय है।"

किन मन्त्रों से होम करें?—"प्रातः और सायंकाल, सन्ध्योपासन के पीछे, इन पूर्वोक्त (अर्थात् नित्य अग्निहोत्र के) मन्त्रों से होम करे।"

—पञ्चमहायज्ञविधि

होम के लाभ—(१) "पूर्वोक्त सुगन्धादियुक्त चार प्रकार के द्रव्यों का अच्छी प्रकार संस्कार करके होम करने से जगत् का अत्यन्त उपकार होता है। जैसे दाल और शाक आदि में सुगन्ध-द्रव्य और घी इन दोनों को चम्मच में अग्नि में तपाके उनमें छोड़ देने से वे सुगन्धित हो जाते हैं, क्योंकि उस सुगन्ध-द्रव्य और घी के अणु उनको सुगन्धित करके दालादि पदार्थों को पुष्टि और रुचि बढ़ानेवाले कर

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

देते हैं, वैसे ही यज्ञ से जो भाप उठता है, वह भी वायु और वृष्टि के जल को निर्दोष और सुगन्धित करके सब जगत् को सुख करता है।"

—ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, वेदविषय

(२) जो वायु सुगन्धादि द्रव्य के परमाणुओं से होम द्वारा आकाश में चढ़के वृष्टि-जल को शुद्ध कर देता और उससे वृष्टि भी अधिक होती है, क्योंकि होम करके नीचे गर्मी अधिक होने से जल भी ऊपर अधिक चढ़ता है। शुद्ध जल और वायु के द्वारा अन्नादि ओषधि भी अत्यन्त शुद्ध होती है। ऐसे प्रतिदिन सुगन्ध के अधिक होने से जगत् में नित्यप्रति अधिक-अधिक सुख बढ़ता है। यह फल अग्नि में होम करने के विना दूसरी प्रकार से होना असम्भव है।"

—ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, वेदविषय

क्या होम न करने से पाप भी होता है ?

(१) "हाँ, क्योंकि जिस मनुष्य के शरीर से जितना दुर्गन्ध उत्पन्न होके वायु और जल को विगाड़कर रोगोत्पत्ति का निमित्त होने से प्राणियों को दुःख प्राप्त करता है, उतना ही पाप के निवारणार्थ उतना सुगन्ध वा उससे अधिक वायु और जल में फैलना चाहिए।"

—सत्यार्थप्रकाश, समुल्लास ३

(२) "जहाँ जितने मनुष्यादि समुदाय अधिक होते हैं, उतना ही दुर्गन्ध भी अधिक होता है। वह ईश्वर की सृष्टि से नहीं किन्तु मनुष्यादि प्राणियों के निमित्त से ही उत्पन्न होता है, क्योंकि हस्ति आदि के समुदायों को मनुष्य अपने ही सुख के लिए इकट्ठा करते हैं, इससे उन पशुओं से भी जो अधिक दुर्गन्ध उत्पन्न होता है, सो मनुष्यों के ही सुख की इच्छा से होता है। इससे क्या आया कि जब वायु और वृष्टिजल को विगाड़नेवाला सब दुर्गन्ध मनुष्यों के ही निमित्त से उत्पन्न होता है, तो उसका निवारण करना भी उनको ही योग्य है।"

—ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, वेदविषय

क्या अग्निहोत्र स्त्री-पुरुष दोनों मिलकर करें ?

"सायं-प्रातः दोनों सन्धिवेलाओं में सन्ध्योपासन करें। इसी प्रकार दोनों स्त्री-पुरुष अग्निहोत्र भी नित्य करें।"

—संस्कारविधि, गृहस्थ

यदि अग्निहोत्र के समय स्त्री-पुरुष दोनों उपस्थित न हों तो फिर क्या किया जाए ?

"किसी विशेष कारण से स्त्री वा पुरुष अग्निहोत्र के समय दोनों साथ उपस्थित न हो सकें तो एक ही स्त्री वा पुरुष दोनों की ओर का कृत्य कर लेवे, अर्थात् एक-एक मन्त्र को दो-दो वार पढ़ दो-दो आहुति करे।"

—संस्कारविधि, गृहस्थ

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

यज्ञ की अवर्णनीय महिमा

होता है सारे विश्व का कल्याण यज्ञ से,
जल्दी प्रसन्न होते हैं भगवान् यज्ञ से।

ऋषियों ने ऊँचा माना है स्थान यज्ञ का,
भगवान् का यह यज्ञ है भगवान् यज्ञ का।

जाता है देवलोक में इन्सान यज्ञ से,
जल्दी प्रसन्न होते हैं भगवान् यज्ञ से।

जो कुछ भी डालो अग्नि में वह खाते अग्निदेव,
इक-इक के बदले सौ-सौ दिलाते हैं अग्निदेव।

बादल बनाके पानी भी बरसाते अग्निदेव,
पैदा अनाज करते हैं भगवान् यज्ञ से।

होता है कन्यादान भी इसी के सामने,
पूजा है इसको कृष्ण ने भगवान् राम ने।

शक्ति व तेजरस भरा इस यज्ञ नाम में,
मिलता है राजकीर्ति सम्मान यज्ञ से।

इसके पुजारी को कोई भी भय नहीं होता,
इसका पुजारी तो कहीं पराजित नहीं होता।

होती हैं सारी मुश्किलें आसान यज्ञ से,
जल्दी प्रसन्न होते हैं भगवान् यज्ञ से।

चाहे अमीर है कोई चाहे गरीब है,
जो नित्य यज्ञ करता है वह खुशनसीब है।

उपकारी मनुष्य बनता है महान् यज्ञ से,
जल्दी प्रसन्न होते हैं भगवान् यज्ञ से॥

□

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

६. वेद में यज्ञोपवीत का विधान

वेद में यज्ञोपवीत के पर्यायवाचक शब्द—

यज्ञोपवीत, उपवीत, उपनयन, उपवीत संवीत, व्रतबन्ध, मौंजीबन्धन, ब्रह्म-सूत्र, आवीत, निवीत, ये नाम जनेऊ के हैं।

यज्ञोपवीत का प्रयोजन—

आचार्यगृह में जाने पर बालक को अपना शिष्य बनाते समय आचार्य यज्ञोपवीत धारण कराता है। यह जहाँ आचार्य के शिष्यवर्ग में प्रवेश का चिह्न है, वहाँ यह अन्य भी कई महत्त्वपूर्ण कर्त्तव्यों का प्रतीक है। यज्ञोपवीत संस्कार अथवा मौंजीबन्धन को बालक का दूसरा जन्म बताया गया है। यह उसके ब्रह्मचर्य एवं विद्याध्ययन का प्रतीक है। तैत्तिरीय संहिता (६-३-१०) में कहा है--

जायमानो वै ब्राह्मणस्त्रिभि ऋणै ऋणवान् जायते।
ब्रह्मचर्येण ऋषिभ्यः, यज्ञेन देवेभ्यः, प्रजया पितृभ्यः॥

अभिप्राय यह है कि मनुष्य पर तीन ऋणों का भार होता है—वह ब्रह्मचर्य का पालन कर ऋषि-ऋण को उतारता है, गृहस्थ धर्म के पालनपूर्वक सन्तानोत्पत्ति से पितृ-ऋण और यजन द्वारा देव-ऋण से अनृण होता है। इन तीन ऋणों की स्मृति जनेऊ के तीन सूत्रों से होती रहती है।

वेद में यज्ञोपवीत का विधान—

(१) **स सूर्यस्य रश्मिभिः परि व्यत तन्तुं तन्वानस्त्रिवृतं यथा विदे।**
नयन्नृतस्य प्रशिषो नवीयसीः पतिर्जनीनामुपयाति निष्कृतम्॥
—ऋग्वेद मं० ६, सू० ८६, मं० ३२

अर्थ—(सः) वह ब्रह्मचारी (यथाविदे) ज्ञानपूर्वक (त्रिवृतं तन्तुं तन्वानः) तीन धागों का जनेऊ धारण करता हुआ (सूर्यस्य रश्मिभिः परिव्यत) सूर्य की किरणों के समान प्रकाश से प्रकाशित होता है। (ऋतस्य प्रशिषः नवीयसीः नयन्) ईश्वर के सृष्टि-नियम की प्रशंसायुक्त नई-नई बातों को फैलाता हुआ (जनीनाम्

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai
पतिः) मनुष्यों का नेता (निष्कृतं उपयाति) स्वतन्त्र विचरता है। इस मन्त्र में स्पष्ट वर्णन है ब्रह्मतेजधारी ब्रह्मचारी तीन धागों का जनेऊ धारण करता है।

(२) **यो यज्ञस्य प्रसाधनस्तन्तुर्देवेष्वाततः।**
तमाहुतं नशीमहि ।। —ऋग्वेद १०।५७।२

(यः) जो (यज्ञस्य) यज्ञ को (प्रसाधनः) पूरा करनेवाला (तन्तुः) सूत्र (देवेषु) विद्वानों में (आततः) फैला हुआ अर्थात् प्रचरित है (तम्) उस (आहुतं) ग्रहण करने योग्य सूत्र को (नशीमहि) हम भी प्राप्त होवें।

(३) **तस्मात् प्राचीनोपवीतस्तिष्ठेत् प्रजापतेऽनु मा बुध्यस्वेति।**
अन्वेनं प्रजा अनु प्रजापतिर्बुध्यते य एवं वेद ।।
—अथर्ववेद ६।१।२४

(तस्मात्) इसलिए (प्राचीन उपवीतः) सामने जनेऊ धारण करके (तिष्ठेत्) खड़ा हो और प्रार्थना करे कि (प्रजापते) हे ईश्वर ! (मा) मुझ पर (अनुबुध्यस्व) कृपा कीजिए। (एनं) ऐसे पुरुष पर (प्रजा) लोग और (प्रजापतिः) ईश्वर (अनुबुध्यते) कृपा करते हैं (य एवं वेद) जो इस रहस्य को समझता है।

(४) **युवा सुवासाः परिवीत आगात्स उ श्रेयान् भवति जायमानः।**
तं धीरासः कवयः उन्नयन्ति स्वाध्यो मनसा देवयन्तः ।।
—ऋग्वेद ३।८।४

अर्थ—(युवा) युवावस्था को प्राप्तकर (सुवासाः) सुन्दर वस्त्र धारण किये (परिवीतः) यज्ञोपवीत को पहने हुए "परितः—सर्वतः वीतः सूत्रेणाच्छादितः।" (आगात्) अच्छी तरह से घर को आये। (स उ) और वह (जायमानः) प्रसिद्ध हो (श्रेयान्) अति श्रेष्ठ (भवति) होता है और (नः) उसको (देवयन्तः) श्रेष्ठ कामना करनेवाले (धीरासः) बुद्धिमान् (स्वाध्यः) अध्ययन करनेवाले (कवयः) सर्वोत्तम प्रवक्तागण (मनसः) अन्तःकरण से (उन्नयन्ति) उन्नत करते हैं। इसी मन्त्र पर महर्षि दयानन्द का भाष्य—

"योऽष्टमं वर्षमारभ्य ब्रह्मचर्येण गृहीतविद्यो युवा सुवासाः परिवीतः सन् गृहमागात्स उ विद्यायां जायमानः सञ्छ्रेयान् भवति तं देवयन्तो धीरासः स्वाध्यः कवयो मनसोन्नयन्ति।"

अर्थ—जो आठवें वर्ष से आरम्भकर ब्रह्मचर्य से विद्या-ग्रहण तथा युवापन में सुन्दर वस्त्रों को और परिवीत को धारण कर घर को आता है वह विद्या में प्रतिभाशाली एवं अत्यन्त प्रशंसित होता है। उस धीर श्रेष्ठचेष्टा और स्वाध्याय करनेवाले को विद्वान् लोग मन से उत्तम मानते हैं।

(५) **देवा एतस्यामवदन्त पूर्वे सप्तऋषयस्तपसे ये निषेदुः।**
भीमा जाया ब्राह्मणस्योपनीता दुर्धां दधाति परमे व्योमन् ।।
—ऋग्वेद १०-१०९-४

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अर्थ—जो सप्त ऋषि तपस्या के लिए पहले प्रवृत्त हुए थे, वे प्राचीन देवगण (विद्वान्) ऐसा कहते हैं कि इस ब्राह्मण की जाया के समान यज्ञोपवीत की शक्ति है वह शक्ति अत्यन्त शुद्धचरित्रा एवं कठिन कर्मपरायणा है। इसके धारण से निकृष्ट जन भी परम पद को पहुँच सकता है।

(६) नमो हरिकेशायोपवीतिने पुष्टानां पतये नमः॥

—यजुर्वेद १६।१७

यज्ञोपवीतधारी हरे केशवालों का सत्कार हो, और इन्हें अन्नादि पदार्थ प्राप्त हों। नीरोग पुरुषों की रक्षा करनेवालों को नमस्कार हो।

इन मन्त्रों के देखने से निश्चय होता है कि यज्ञोपवीत का विषय वेद से ही प्रतिपादित अनादिकाल से चला आता है। आगे और मन्त्र पाठकों के समक्ष दिए जाते हैं।

यज्ञोपवीत किन-किन वस्तुओं का बना हो—

कार्पासक्षौमगोबालशणवल्कतृणादिकम्।
सदा सम्भवतो धार्यमुपवीतं द्विजातिभिः॥
शुचौ देशे शुचिः सूत्रं संगतांगुलिमूलके।
आवेष्टय षण्णवत्या तत् त्रिगुणीकृत्य यत्नतः॥

—कात्यायन स्मृति से

अर्थ—कपास, अलसी, गाय के बाल, सण, वल्कल और तृणों से यथासम्भव बना हुआ यज्ञोपवीत द्विजातियों को (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों को) धारण करना चाहिए। शुद्ध देश से शुद्ध धागा लेकर (सूत कपास का, रेशम का, सन का या वल्कल आदि का) उनको तिहरा करके अपने हाथ की अँगुलियों के मूल में ९६ बार धागा लपेटे और उस धागे को तिहरा करके बट ले। इस प्रकार से यज्ञोपवीत बनाये।

यज्ञोपवीत कैसा हो—

त्रिवृद्वूर्ध्ववृत्तं कार्यं तन्तुं त्रयमधोवृतम्।
त्रिवृतं चोपवीतं स्यात्तस्यैको ग्रन्थिरिष्यते॥
पृष्ठवंशे च नाभ्यां च धृतं यद्विन्दते कटिम्।
तद्धार्यमुपवीतं स्यान्नातिलम्बं न चोच्छ्रितम्॥

—कात्यायनस्मृति, खण्ड १, श्लोक २-३

वामस्कन्धे धृतं नाभिहृत्पृष्ठवंशयोर्धृतम्।

अर्थ—जो तीन धागों से बना हुआ यज्ञोपवीत है, उसमें एक ग्रन्थि या गाँठ लगी होती है। पृष्ठवंश से नाभि तक धारण किया गया यज्ञोपवीत कटि की शोभा

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai
को बढ़ाता है। ऐसा धारण किया गया यज्ञोपवीत न अधिक लम्बा हो और न अधिक छोटा हो। बायें कन्धे पर धारण किया गया यज्ञोपवीत नाभि हृदय और पृष्ठवंश को स्पर्श करता है।

यज्ञोपवीत का मन्त्र—

यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात्।
आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः॥
यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्य त्वा यज्ञोपवीतेनोपनह्यामि॥

—पा० गृ० सू० का० २, क० २, सू० ११

अर्थ—हे बालक (यज्ञोपवीतं) "यज्ञाय यज्ञकर्मणे वेदोक्तकर्माधिकारायेति वा उपरिवीतम्-उपवीतम्-परिहितम्" वेदोक्त कर्म में अधिकारी बनने के लिए जो कन्धे के ऊपर रक्खा जाए इस ब्रह्मसूत्र को और जो (परमम्) परः आत्मा मीयते ज्ञायते अनेन—परमात्मा के ज्ञानप्राप्ति का सूचक है (पवित्रम्) शुद्धि के ज्ञान की सूचना करनेवाला (यत् प्रजापतेः सहजम्) जो ईश्वर से स्वभावसिद्ध उपदिष्ट है (पुरस्तात्) पूर्वकाल से चला आता है (आयुष्यम्) आयु के लिए हितकारी (अग्र्यम्) मुख्य है, ऐसे इस ब्रह्मसूत्र को मैं आज (प्रतिमुञ्च) बाँधता हूँ (पुरुष-व्यत्ययश्छान्दसः) (शुभ्रम् यज्ञोपवीतम्) यह निर्मलता का बोधक यज्ञोपवीत (बलम्) बल देनेवाला और (तेजः) तेज देनेवाला (अस्तु) होवे। हे ब्रह्मसूत्र (यज्ञोपवीतम् असि) तू यज्ञोपवीत है (त्वा) तुझे (यज्ञस्य) यज्ञकार्य के लिए ही ग्रहण करता हूँ और स्वयं को आज (यज्ञोपवीतेन) यज्ञोपवीत से (उपनह्यामि) बाँधता हूँ।

यज्ञोपवीत गीत

तीन सूत्र यज्ञोपवीत के शुभ कर्त्तव्य जताते हैं।
तुम कर्त्तव्य करो नित पालन, यह शिक्षा तुम्हें बताते हैं॥
पवित्रता को धारण कर लो, देह तथा मन वाणी की।
पवित्रता ही परम धर्म है, यह ये सूत्र सुनाते हैं॥
ज्ञान, कर्म, परमेश भक्ति, ये तीन मुक्ति के साधन हैं।
इनको प्राप्त करो उत्साही, बनकर यह सिखलाते हैं॥
तुम शरीर की, मन आत्मा की, शक्ति-वृद्धि का यत्न करो।
सम विकास को उत्तम गुरुजन, उन्नति-तत्त्व बताते हैं॥
ऋण ईश्वर का, मात-पिता का, ऋषिगण का, ये तीनों हैं।
तीन तार ये ब्रह्मसूत्र के, इनका स्मरण कराते हैं॥
चिह्न नहीं ये उच्च जाति के, किन्तु चिह्न कर्त्तव्यों के।
जो जाने उसकी उन्नति के, साधन ये बन जाते हैं॥
ज्ञान कर्म ईश्वरोपासना, ये वेदों के मुख्य विषय हैं।
इससे वेदों के पढ़ने को, सूचित यही कराते हैं॥

□

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

७. वेद में शिवसंकल्प मन्त्र

यजुर्वेद में चौतीसवें अध्याय के आरम्भ में छह मन्त्र मन के शिवसंकल्प विषय में वर्णन करते हैं। रात्रि-शयन-समय में इन मन्त्रों का सब लोग चिन्तन करें तो अति उत्तम हो। यहाँ पर विशेष रूप से विद्यार्थियों के लिए मन्त्र, अर्थ, भावार्थ और मन्त्र से क्या शिक्षा प्राप्त होती है, यह प्रस्तुत किया जाता है—

ओ३म् यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति।
दूरंगमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥

अर्थ—हे जगदीश्वर वा राजन्! आपकी कृपा से (यत्) जो (दैवम्) आत्मा में रहने वा जीवात्मा का साधन (दूरंगमम्) दूर जाने, मनुष्य को दूर तक ले जाने वा अनेक पदार्थों का ग्रहण करनेवाला (ज्योतिषाम्) शब्द आदि विषयों के प्रकाशक श्रोत्र आदि इन्द्रियों को (ज्योतिः) प्रवृत्त करनेहारा (एकम्) एक (जाग्रतः) जाग्रत् अवस्था में (दूरम्) दूर-दूर (उत् ऐति) भागता है (उ) और (तत्) वह (सुप्तस्य) सोए हुए का (तथा एव एति) वैसे ही भागता है (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) संकल्प-विकल्पात्मक मन (शिवसंकल्पम्) कल्याणकारी धर्म-विषयक इच्छावाला (अस्तु) हो।

भावार्थ—जो मनुष्य परमेश्वर की आज्ञा का सेवन और विद्वानों का संग करके अनेकविध सामर्थ्ययुक्त मन को शुद्ध करते हैं, जो जागृतावस्था में विस्तृत व्यवहारवाला वही मन सुषुप्ति अवस्था में शान्त होता है, जो वेगवाले पदार्थों में अति-वेगवान् ज्ञान का साधन होने से इन्द्रियों के प्रवर्तक मन को वश में करते हैं वे अशुभ व्यवहार को छोड़ शुभ व्यवहार में मन को प्रवृत्त कर सकते हैं।

शिक्षा—रावण के पुत्र मेघनाद का नाम सबने सुना होगा। उसे 'मेघनाद' इसलिए कहते थे क्योंकि जब वह बोलता था, बादल की गम्भीर गर्जन की तरह आवाज जान पड़ती थी। वीर्यवान्, ब्रह्मचारी और संयम से रहनेवाले पुरुषों की आवाज ऐसी ही गम्भीर निकलती है। बोलता क्या है मानो घन-गर्जना होती है। मेघनाद को 'इन्द्रजित्' के नाम से पुकारते थे। इन्द्रियाँ मन के पीछे-पीछे चलती हैं। जिधर मन उनको नचाना चाहता है, वे उधर ही नाचने लग जाती हैं। इससे

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai
मन इन्द्रियों का स्वामी इन्द्र हुआ। जिसने इस मनरूप 'इन्द्र' पर विजय पा ली वह 'इन्द्र-जित्' कहलाया। मेघनाद का मन पर पूरा काबू था, इसी से वह जितेन्द्रिय भी था और ब्रह्मचारी भी था, अपने समय का लंका में अद्वितीय नौजवान था। युद्ध में 'इन्द्रजित्' जैसे वीर और पराक्रमी का पछाड़ना साधारण काम न था। लक्ष्मण जैसे पूर्ण ब्रह्मचारी, संयमी और यति ही उसपर विजय पा सकते थे। लक्ष्मण ने वन-जीवन के १४ वर्ष विशेष संयम के साथ बिताये थे। स्त्री-मात्र को मातृदृष्टि से देखा। सीताजी के केवल चरणों के ही आभूषण पहचान सके, अन्य अंगों के नहीं। इसी से वे लक्ष्मण यति के नाम से प्रसिद्ध हुए और इसी से वे मेघनाद का प्राणान्त करने में भी सफल हुए। मेघनाद का पराभव इसलिए हुआ कि वह इन्द्रजित् होता हुआ भी शिव-संकल्प-मन न था। तुम शिवसंकल्प इन्द्रजित् बनो।

येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः।
यदपूर्वं यक्षमन्तःप्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥२॥

अर्थ—हे परमेश्वर वा विद्वन्! जब आपके संग से (येन) जिस (अपसः) सदा कर्म-धर्मनिष्ठ (मनीषिणः) मन का दमन करनेवाले (धीराः) ध्यान करनेवाले बुद्धिमान् लोग (यज्ञे) अग्निहोत्रादि वा धर्मसंयुक्त व्यवहार वा योगयज्ञ में और (विदथेषु) विज्ञान-सम्बन्धी और युद्धादि व्यवहारों में (कर्माणि) अत्यन्त इष्ट कर्मों को (कृण्वन्ति) करते हैं, (यत्) जो (अपूर्वम्) सर्वोत्तम गुण-कर्म-स्वभाववाला (प्रजानाम्) प्राणिमात्र के (अन्तः) हृदय में (यक्षम्) पूजनीय वा संगत, एकीभूत हो रहा है (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) मनन, विचार करनारूप मन (शिवसंकल्पम्) धर्मेष्ठ (अस्तु) होवे।

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि परमेश्वर की उपासना, सुन्दर विचार, विद्या और सत्संग से अपने अन्तःकरण को अधर्माचरण से निवृत्त कर धर्म के आचरण में प्रवृत्त करें।

शिक्षा—मननशील, विचारशील मनुष्यों को, जिन्होंने अपने मन पर ईशत्व, प्रभुत्व, अधिकार जमा लिया हो 'मनीषी' कहते हैं। यदि तुमने बाल्यकाल ही से मनीषी बनने का प्रयत्न, अभ्यास करना प्रारम्भ कर दिया, तो धीरे-धीरे तुम्हारा शारीरिक बल, मानसिक बल और आत्मिक बल भी बढ़ने लगेगा और तुम्हारी प्रवृत्ति, अभिरुचि, यशकर्मों में, पुरुषार्थ के कामों में दृढ़ हो जाएगी, आपत्तियों को शिर पर आते देख तुम अधीर न हो उठोगे। (प्रजानां अन्तः) लोगों के बीच में तुम आश्चर्य उत्पन्न करनेवाले अद्वितीय, अपूर्व (यक्ष) पूज्य बन जाओगे। जहाँ-जहाँ निकलोगे लोग तुम्हारे लिए नमन करेंगे, शिर झुकाएँगे।

यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु।
यस्मान्नऽऋते किंचन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥३॥

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अर्थ—हे जगदीश्वर वा परमयोगिन् विद्वन् ! आपके जताने से (यत्) जो (प्रज्ञानम्) विशेषकर ज्ञान का उत्पादक बुद्धिरूप (उत) और भी (चेतः) स्मृति का साधन (धृतिः) धैर्यस्वरूप (च) और लज्जादि कर्मों का हेतु (यत्) जो (प्रजासु) मनुष्यों के (अन्तः) अन्तःकरण का साथी होने से (अमृतम्) नाशरहित (ज्योतिः) प्रकाशरूप (यस्मात्) जिससे (ऋते) विना (किम्, चन) कोई भी (कर्म) काम (न क्रियते) नहीं किया जाता (तत्) वह (मे) मुझ जीवात्मा का (मनः) सब कर्मों का साधनरूप मन (शिवसंकल्पम्) कल्याणकारी परमात्मा में इच्छा रखनेवाला (अस्तु) हो।

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो अन्तःकरण, बुद्धि, चित् और अहंकाररूप वृत्ति-वाला होने से चार प्रकार से भीतर प्रकाश करनेवाला, प्राणियों के सब कर्मों का साधक अविनाशी मन है उसको न्याय और सत्य आचरण में प्रवृत्त कर पक्षपात, अन्याय और अधर्माचरण से तुम लोग निवृत्त करो।

शिक्षा—यह वेदमन्त्र मन की शक्तियों का वर्णन कर रहा है, इनका राष्ट्रिय स्वतन्त्रता से बड़ा गहरा सम्बन्ध है। यह ठीक ही कहा है—**बुद्धिर्यस्य बलं तस्य निर्बुद्धेस्तु कुतो बलम्** ? जिसमें बुद्धिबल है वही सच्चा बलवान् है, बुद्धिहीन में बल कहाँ ? कोई समय था जब शारीरिक बल ही प्रधान समझा जाता था, किन्तु जब से बन्दूक और मशीनगन बुद्धि ने बना दी तब से शरीर-बल निकम्मा पड़ गया। अब जबकि विज्ञान से आकाशयान, जहरीली गैसें और अणुबम्ब खड़ी की हैं, तो तलवार, बन्दूक, मशीनगन, किले सब बेकार हो गये हैं। आकाशयानों से बिजली की लहरों के द्वारा ऐसी-ऐसी जहरीली गैसें छोड़ी जा सकती हैं जिनसे मिनटों में शहर-के-शहर तबाह हो जाएँगे। जिस जाति का विज्ञान बढ़ा-चढ़ा होगा वही जाति विजयी होगी। विश्व में सदा मस्तिष्क ने राज्य किया और वही हमेशा हुकूमत करेगा।

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत् परगृहीतममृतेन सर्वम्।
येन यज्ञस्तायते सप्त होता तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥४॥

अर्थ—हे मनुष्यो ! (येन) जिस (अमृतेन) नाशरहित, परमात्मा के साथ युक्त होनेवाले मन से (भूतम्) व्यतीत हुआ (भुवनम्) वर्तमान काल [सम्बन्धी] और (भविष्यत्) होनेवाला (सर्वम् इदम्) यह सब त्रिकालस्थ वस्तुमात्र (परि-गृहीतम्) सब ओर से गृहीत होता अर्थात् आता-जाता है (येन) जिससे (सप्त होता) सात मनुष्य होता वा पाँच प्राण, छठा जीवात्मा और अव्यक्त सातवाँ ये सात लेने-देनेवाले हों वह (यज्ञः) अग्निष्टोमादि वा विज्ञानरूप व्यवहार (तायते) विस्तृत किया जाता है। (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) योगयुक्त चित्त (शिवसंकल्पम्) मोक्ष संकल्पवाला (अस्तु) होवे।

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो चित्त योगाभ्यास के साधन और उपसाधनों से

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सिद्ध हुआ भूत, भविष्यत्, वर्तमान तीनों काल का ज्ञाता, सब सृष्टि का जानने-वाला, कर्म, उपासना और ज्ञान का साधक है उसको सदा ही कल्याण में प्रेरित करो।

शिक्षा—विद्यार्थियो ! तुम हर रोज हवन-यज्ञ होते देखते हो। हवन करने-वाला होता कहाता है। हवन, हवि, हूत आदि सब पर्यायवाची हैं। होता शब्द भी इन्हीं की विरादरी का है। ये सब 'हु' धातु से बनते हैं। यह धातु दान, आदान, प्रीणन अर्थ में प्रयुक्त होती है। दान देने को कहते हैं, आदान लेना कहाता है, प्रीणन प्रसन्न करना, तृप्त करने का नाम है। यह लेने-देने, तृप्त करने का काम हम सबके अन्दर अहर्निश होता रहता है। आँख ने एक लम्बी रस्सी की शक्ल की वस्तु का फोटो लिया और झट से उसे ले-जाकर मन के कैमरे में आत्मा के सुपुर्द कर दिया। हमने जान लिया कि सर्प है और बचकर निकल गये। नाक ने सुगन्ध ली और मन को सुपुर्द कर दी। बुद्धिरूप वजीर ने इन्द्रदेव आत्मा के सामने यह खबर पेश कर दी। इसी प्रकार ये पाँचों इन्द्रियाँ अर्थात् आँख, नाक, कान, जीभ, त्वचा और छठा मन, सातवीं बुद्धि अपने स्वामी इन्द्रदेव जीवात्मा का प्रीणन करते रहते हैं, तृप्ति करते रहते हैं। चूँकि ये लेने-देने और तृप्ति करने का काम करते हैं, इसलिए वेदमन्त्र का इन्हें सप्तहोता के नाम से पुकारना उचित ही है। इस सप्तहोता यज्ञ के ठीक होते रहने से मन के अन्दर अद्भुत शक्तियों का संचार होने लगता है। उसमें भूत, भविष्यत् और वर्तमान ऐसे दिखलाई देने लगते हैं जैसे दर्पण में प्रतिबिम्ब। मन के इस प्रकार निर्मल बन जाने से मनुष्य त्रिकालज्ञ हो जाता है।

यस्मिन्नृचः साम यजूँषि यस्मिन्प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः।
यस्मिंश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥५॥

अर्थ—(यस्मिन्) जिस मन में (रथनाभाविव, अराः) जैसे रथ के पहिए के बीच में काष्ठ में अरा लगे होते हैं वैसे (ऋचः) ऋग्वेद (साम) सामवेद (यजूंषि) यजुर्वेद (प्रतिष्ठिताः) सब ओर से स्थित और (यस्मिन्) जिसमें अथर्ववेद स्थित है (यस्मिन्) जिनमें (प्रजानाम्) प्राणियों का (सर्वम्) समग्र (चित्तम्) सर्व पदार्थ-सम्बन्धी ज्ञान (ओतम्) सूत में मणियों के समान संयुक्त है (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) मन (शिवसंकल्पम्) कल्याणकारी वेदादि सत्य शास्त्रों का प्रचाररूप संकल्पवाला (अस्तु) हो।

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोगों को चाहिए कि जिस मन के स्वस्थ रहने में ही वेदादि विद्याओं का आधार और जिसमें सब व्यवहारों का ज्ञान एकत्र होता है, उस अन्तःकरण को विद्या और धर्म के आचरण से पवित्र करो॥

शिक्षा—रथ पहियों के सहारे चलता है, अतः वह उसके नाभि-रूप हैं। हमारी समस्त नस-नाड़ियाँ अरा-रूप हैं और वे नाभि-रूप चक्र में प्रतिष्ठित हैं,

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मजबूती से जकड़ी हुई हैं। इसी प्रकार समस्त इन्द्रिय शक्तियाँ मनरूपी चक्र में प्रतिष्ठित हैं, जुड़ी हुई हैं। पहिए की जरा-सी हरकत से सब-की-सब हिलने लगती हैं। कैसा सुन्दर उदाहरण है !

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ।।६।।

अर्थ—(यत्) जो मन (सुपारथिः) जैसे सुन्दर चतुर सारथि गाड़ीवान, (अश्वानिव) लगाम से घोड़ों को सब ओर से चलाता है वैसे (मनुष्यान्) मनुष्यादि प्राणियों को (नेनीयते) शीघ्र-शीघ्र इधर-उधर घुमाता है और (अभीशुभिः) जैसे रस्सियों से (वाजिनः इव) वेगवाले घोड़ों को सारथि वश में करता वैसे नियम में रखता है (यत्) जो (हृत्प्रतिष्ठं) हृदय में स्थित (अजिरम्) विषयादि में प्रेरक वा वृद्धादि अवस्थारहित और (जविष्ठम्) अत्यन्त वेगवान् है (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) मन (शिवसंकल्पम्) मंगलमय नियम में इष्ट (अस्तु) हो।

भावार्थ—इस मन्त्र में दो उपमालङ्कार हैं। जो मनुष्य जिस पदार्थ में आसक्त है वही बल से सारथि घोड़ों को जैसे-वैसे प्राणियों को ले-जाता और लगाम से सारथि घोड़ों को जैसे-वैसे वश में रखता, सब मूर्खजन जिसके अनुकूल वर्तते और विद्वान् अपने वश में करते हैं, जो शुद्ध हुआ सुखकारी और अशुद्ध हुआ दुःखदायी, जो जीता हुआ सिद्धि को और न जीता हुआ असिद्धि को देता है वह मन मनुष्यों को अपने वश में करना चाहिए।

शिक्षा—इस वेदमन्त्र में 'मन' की घोड़े से उपमा दी है। जीवात्मा उसपर सवारी करता है। मन्त्र यह चेतावनी दे रहा है कि हे मनुष्य ! परमेश्वर ने तुझे शरीररूपी सुन्दर रथ और मनरूपी परमोपयोगी घोड़ा दिया है। तू इस घोड़े को इस प्रकार की शिक्षा दे, तालीम दे, ट्रेनिंग दे कि जिससे तू इस रथ में आराम से बैठकर सौ वर्षों की मंजिल को सकुशल पूरी कर सके। याद रख, यह बड़ा (जविष्ठ) है, तेज रफ्तारवाला है। इसकी लगाम हमेशा कसी रहनी चाहिए। यदि तुमने लगाम ढीली छोड़ दी और इसकी तरफ से बेखबर हो गये, तो फिर ठिकाना नहीं। न जाने यह फिर तुम्हें किन कँटीली झाड़ियों में जा पटके, किन-किन खाई-खन्दकों में तुम्हारे रथ को घसीटकर उसे चूर-चूर कर डाले और तुम्हारे हाथ-पैरों को तोड़ तुम्हें लुंज बना दे। सावधान ! लगाम ढीली न छोड़ो !

यहाँ आपके समक्ष मन्त्रों के अर्थ और भावार्थ महर्षि दयानन्द के प्रस्तुत किये तथा उनसे क्या शिक्षा मिलती है यह दर्शाया। पाठकगण ! इन मन्त्रों के अनुसार मन को वश में करने से हम मुक्ति-पथ के पथिक बन सकते हैं।

प्रभो ! जागते हुए सदा जो दूर दूर तक जाता है।
सोते में भी दिव्य शक्तिमय कोसों दौड़ लगाता है।।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

दूर दूर वह जानेवाला तेजों का भी तेजनिधान।
नित्य युक्त शुभ संकल्पों से वह मन मेरा हो भगवान् ॥१॥

जिसके द्वारा बुद्धिमान् सब नाना करतब करते हैं।
सत्कर्मों को करें मनीषी, वीर युद्ध में मरते हैं॥

पूजनीय अतिशय जिसका है, प्रजावर्ग में अद्भुत मान।
नित्य युक्त शिव संकल्पों से वह मन मेरा हो भगवान् ॥२॥

जिसमें धैर्य, शक्ति चिन्तन की तथा ज्ञान रहता भरपूर।
प्राणिमात्र में अमृतमय है, अरु प्रकाश का बहता पूर॥

जिसके विना नहीं चलता है, निश्चय कोई कार्य विधान।
नित्य युक्त शुभ संकल्पों से वह मन मेरा हो भगवान् ॥३॥

अमर तत्त्व जो त्रय कालों का भेद यथावत् पाता है।
बुद्धि ज्ञान की पाँच इन्द्रियाँ, अहंकार से नाता है॥

इन्हीं सप्त ऋत्विज का फैला जिसमें निशदिन यज्ञ-वितान।
नित्य युक्त शिव संकल्पों से वह मन मेरा हो भगवान् ॥४॥

चारों वेद निगमागम सारे ईश-ज्ञान के सुन्दर स्रोत।
रथ के पहिये में ज्यों आरे एवं रहते ओतप्रोत॥

जंगम-जग का चित्त अचल हो जिसमें रहता निष्ठावान्।
नित्य युक्त शिव संकल्पों से वह मन मेरा हो भगवान् ॥५॥

जो जन कुल को बागडोर से इधर-उधर ले-जाता है।
चतुर सारथी ज्यों घोड़े को उत्तम चाल सिखाता है॥

सदा प्रतिष्ठित हृदय-देश में विपुल तीव्र गति अजर महान्।
नित्य युक्त शिव संकल्पों से वह मन मेरा हो भगवान् ॥६॥

□

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

८. वेद में चरित्र-निर्माण

चरित्र और विद्या का घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसी अभिप्राय से प्राचीनकाल में यह प्रथा थी कि पढ़नेवालों को ब्रह्मचारी कहते थे। ब्रह्म का अर्थ है ज्ञान, वेद और ईश्वर। ईश्वर की आज्ञा, वेद की शिक्षा और ज्ञान के प्रकाश से जो मनुष्य अपना आचरण संयत रखता है, वह ब्रह्मचारी है। इसी प्रकार जो गुरु या अध्यापक है, वह अपना आचरण पवित्र रखता हुआ अपने शिष्य का आचरण भी पवित्र बनाता है, केवल पढ़ाता नहीं। शिक्षा-जगत् के सब पढ़ानेवालों को अपना वास्तविक स्वरूप समझ लेना चाहिए। केवल मौखिक प्रतिज्ञा पर्याप्त नहीं। यदि यह बात ध्यान में रहे कि विद्याप्राप्ति आचरण पवित्र बनाने के लिए है तो पढ़े-लिखे विद्यार्थियों और अध्यापकों की जो चिंताजनक अवस्था है उसका सुधार हो सकता है। विद्याप्राप्ति बड़ा बनने या रोटी कमाने के लिए नहीं, बल्कि सज्जन या भला बनने के लिए है। गायत्री मन्त्र मनुष्य को बुद्धिमान् बनाता है, साथ ही उसमें सज्जनता, पवित्रता और उत्साहशीलता भी भरता है।

योगदर्शन के समाधि पाद के २६वें सूत्र में ईश्वर को आदिगुरु माना गया है—**"पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्"**—आदि में उत्पन्न होने के कारण सबका गुरु ब्रह्मा माना जाता है, परन्तु उसका काल से अवच्छेद है। ईश्वर आचार्य भी है और गुरु भी है। ईश्वर आचार्य इसलिए है, क्योंकि वह सत्य आचार का ग्रहण करानेहारा और सब विद्याओं की प्राप्ति का हेतु होके सब विद्या प्राप्त कराता है। **"य आचारं ग्राहयति सर्वा विद्या बोधयति स आचार्य ईश्वरः"**—ईश्वर, गुरु भी इसी आधार पर है कि सब प्रकार का धर्म और विद्या का आदि-स्रोत वही है **"यो धर्मान् शब्दान् गुणात्युपदिशति सः गुरुः।** ईश्वर गुरु है और आदिगुरु है। उसका संचालन सारे जगत् में चरितार्थ है इसलिए उसे आदिगुरु के मुख्य विधान या मन्त्र की आवश्यकता है, जिससे मनुष्य के हृदय-जगत् की अर्थात् उस केन्द्र की जहाँ से इच्छाएँ और दोष उत्पन्न होते हैं व्यवस्था ठीक हो सके। प्राचीन पद्धति के अनुसार गुरुमन्त्र गायत्री मन्त्र है जो निम्न प्रकार है—

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात्॥

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

इस मन्त्र का शब्दार्थ निम्न प्रकार है—

(सवितुः) प्रेरक उत्पादक (देवस्य) परमात्मा देव के (तत्) उस (वरेण्यम्) वरने योग्य (भर्गः) शुद्ध तेज को (धीमहि) हम धारण करते हैं (यः) जो धारण किया हुआ तेज (नः) हमारी (धियः) बुद्धियों को, कर्मों को (प्रचोदयात्) सदा सन्मार्ग पर प्रेरित करता रहे।

प्रत्येक मनुष्य सुख चाहता है और सुख के लिए दीर्घ जीवन चाहता है; चेतना ज्ञान, आनन्द और स्थायी सुख भी चाहता है। ईश्वर इन तीनों का आदि-स्रोत है अर्थात् ईश्वर अनादि है, ज्ञान का स्रोत है। दुःखों से छुड़ानेवाला और सुख का देनेवाला है, इसलिए मन्त्र के आरम्भ में भूर्भुवः स्वः के रूप में ईश्वर के तीन महान् गुण वर्णन किये गये हैं, जिनसे जीव का घनिष्ठ सम्बन्ध है। इस मन्त्र में ओ३म् शब्द से अभिप्राय ईश्वर के मुख्य नाम से है। ओ३म् से लेकर 'भूर्भुवः स्वः' तक लक्ष्य में रखते हुए ईश्वर के मुख्य और उसके विशेष गुण हमारे सम्मुख आ जाते हैं। सविता से उसके रचयिता होने की भावना उत्पन्न होती है और वरेण्यं से उसके न्यायकारी होने की। 'भर्गो देवस्य धीमहि' से अभिप्राय है हम उस दिव्यगुणयुक्त और पापों को दूर करनेवाली परमात्मा की बुद्धि को अपनी बुद्धि से संयुक्त करते-हैं अर्थात् जिसकी बुद्धि उससे जुड़ी हुई न होगी तो भी जीवन धार्मिक और सफल न हो सकेगा। यदि बुद्धि हमारी कर्म से जुड़ी हुई और उसको प्रकाशित करने-वाली नहीं होगी तो भी हमारे कर्म अच्छे नहीं होंगे, हम पाप से न बच सकेंगे। इसलिए मन्त्र के अन्त में 'धियो यो नः प्रचोदयात्' से यह दर्शाया गया है कि हमारी बुद्धि केवल ईश्वर से जुड़ी हुई न हो, प्रत्युत बुद्धि जो ईश्वर के प्रकाश से प्रकाशित है हमारे कर्म को भी मर्यादित कर सके। गुरुमन्त्र चरित्र-निर्माण का मुख्य मन्त्र है। इस मन्त्र से ब्रह्मचारी, सच्चा ब्रह्मचारी बनता है अर्थात् वह अपना जीवन ज्ञान तथा ईश्वर के आदेश के अनुसार बना सकता है। साथ ही आचार्य भी अपना जीवन पवित्र बनाता हुआ, अपने ब्रह्मचारियों का जीवन भी पवित्र बना सकेगा। गायत्री मन्त्र से केवल सुख की प्राप्ति नहीं होगी, केवल दुःख निवारण नहीं होगा, बल्कि आत्मिक शान्ति भी मिलेगी और आनन्द का भी कारण यह मन्त्र बन सकेगा। पिता-माता व अध्यापक अपने लड़के-लड़कियों को अर्थ-सहित गायत्री मन्त्र का उपदेश कर दें। केवल मनुष्य में ही यह विशेषता है कि वह ज्ञान प्राप्त कर सकता है, ज्ञान में वृद्धि कर सकता है। अन्य प्राणियों में केवल स्वाभाविक ज्ञान है, परन्तु मनुष्य में केवल स्वाभाविक ज्ञान उसके विकास के लिए पर्याप्त नहीं है। उसमें ज्ञान प्राप्त करने की शक्ति है, परन्तु उसका ज्ञान दूसरों से मिलता है। जिनसे ज्ञान मिलता है वे अध्यापक या गुरु कहलाते हैं। परन्तु ज्ञान आदि का अर्थ चरित्र-निर्माण है। ऐसी दशा में जिनके द्वारा ज्ञान प्राप्त हो, उनके लिए सबसे उत्तम परिभाषा आचार्य की है। आचार्य वे हैं जो स्वयं

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जैसा जानें, वैसा करें, और जिनको ज्ञान दें, उनको न केवल जानने और मानने की प्रेरणा करें परन्तु जैसा जानें एवं मानें, वैसा जानने और करने के लिए भी उत्साहित करें।

मनुष्य के भीतर उसकी अन्तर्-आत्मा चेतावनी देते रहने के लिए है। जब कोई बुरा विचार सामने आता है, और काम करने के लिए प्रेरणा मिलती है तो अन्दर का चौकीदार अर्थात् अन्तर्-आत्मा 'सावधान रहो', 'होशियार रहो' की आवाज उठाता है। यदि चौकीदार की इस आवाज को सुनने का अभ्यास हो तो चोर से बच जाएगा। यदि चौकीदार की आवाज को वह नहीं सुनेगा वा सुनकर अनसुनी कर देगा तो अपराध या पाप कर सकता है। यह गायत्री मन्त्र इसीलिए है कि भीतरी चौकीदार की आवाज सुनने का अभ्यास बना रहे और चोरी से बचा जा सके।

□

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

९. वेद में "आर्य" के अनेक अर्थ

(१) वि जानीह्यार्य्यान्ये च दस्यवो बर्हिष्मते रन्धया शासदव्रतान्।
शाकी भव यजमानस्य चोदिता विश्वेत्ता ते सधमादेषु चाकन ।।

—ऋग्वेद मण्डल १, सूक्त ५१, मन्त्र ८

अर्थ—हे मनुष्य ! तू (बर्हिष्मते) उत्तम सुखादि गुणों के उत्पन्न करनेवाले व्यवहार की सिद्धि के लिए (आर्यान्) सर्वोपकारक, धार्मिक, विद्वान् मनुष्यों को (विजानीहि) जान और (ये) जो (दस्यवः) परपीड़ा करनेवाले, अधर्मी, दुष्ट मनुष्य हैं उनको जानकर (बर्हिष्मते) धर्म की सिद्धि के लिए (रन्धय) मार और उन (अव्रतान्) सत्यभाषणादि धर्मरहित मनुष्यों को (शासत्) शिक्षा करते हुए (यजमानस्य) यज्ञ के कर्त्ता का (चोदिता) प्रेरणाकर्त्ता और (शाकी) उत्तम शक्तियुक्त सामर्थ्य को (भव) सिद्ध कर जिससे (ते) तेरे उपदेश वा संग से (सधमादेषु) सुखों के साथ वर्तमान स्थानों में (ता) उन (विश्वा) सब कर्मों को सिद्ध करने की (इत्) ही मैं (चाकन) इच्छा करता हूँ।

भावार्थ—मनुष्य को दस्यु अर्थात् दुष्ट स्वभाव को छोड़कर आर्य अर्थात् श्रेष्ठ स्वभावों के आश्रय से वर्तना चाहिए। वे ही आर्य हैं कि जो उत्तम विद्यादि के प्रचार से सबके उत्तम भोग की सिद्धि और अधर्मी दुष्टों के निवारण के लिए निरन्तर यत्न करते हैं। निश्चय करके कोई मनुष्य आर्यों के संग, उनसे अध्ययन वा उपदेशों के विना यथावत् धर्मात्मा आर्यस्वभावयुक्त होने को समर्थ नहीं हो सकता। इससे निश्चय करके आर्य के गुण और कर्मों को सेवन कर और दस्यु-कर्मों को छोड़कर निरन्तर सुखी रहना चाहिए। —महर्षि दयानन्दभाष्य

(२) मूर्द्धा दिवो नाभिरग्निः पृथिव्या अथाभवदरती रोदस्योः।
तं त्वा देवासोऽजनयन्त देवं वैश्वानर ज्योतिरिदार्याय ।।

—ऋग्वेद मण्डल १, सूक्त ५९, मन्त्र २

अर्थ—हे (वैश्वानर) सब संसार के नायक ! जो आप (अग्निः) बिजुली के समान (दिवः) प्रकाश वा (पृथिव्याः) भूमि के मध्य समान (मूर्द्धा) उत्कृष्ट और (नाभिः) मध्यवर्तिव्यापक (अभवत्) होते हो (अथ) इन सब लोकों की रचना के अनन्तर जो (रोदस्योः) प्रकाश और अप्रकाशरूप सूर्यादि और भूमि आदि लोकों

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai
के (अरतिः) आप व्यापक होके अध्यक्ष (अभवत्) होते हो जो (आर्याय) उत्तम गुण-कर्म-स्वभाववाले मनुष्य के लिए (ज्योतिः) ज्ञान-प्रकाश वा मूर्त्तद्रव्यों के प्रकाश को (इत्) ही करते हैं जिस (देवम्) प्रकाशमान (त्वा) आपको (देवासः) विद्वान् लोग (अजनयन्त) प्रकाशित करते हैं वा जिस बिजुलीरूप अग्नि को विद्वान् लोग (अजनयन्त) प्रकट करते हैं (तम्) उस आप ही की उपासना हम लोग करें।

भावार्थ—जिस जगदीश्वर ने आर्य अर्थात् उत्तम मनुष्यों के विज्ञान के लिए सब विद्याओं के प्रकाश करनेवाले वेदों को प्रकाशित किया है तथा जो सबसे उत्तम, सबका आधार जगदीश्वर है उसको जानकर मनुष्यों को उसी की उपासना करनी चाहिए। —ऋषिभाष्य

(३) स जातूभर्मा श्रद्दधान ओजः पुरो विभिन्दन्नचरद्वि दासीः।
विद्वान् वज्रिन्दस्यवे हेतिमस्यार्यं सहो वर्धया द्युम्नमिन्द्र॥

—ऋ० मं० १, सू० १०३, मन्त्र ३

अर्थ—हे (वज्रिन्) प्रशंसित शस्त्रसमूह युक्त (इन्द्र) अच्छे-अच्छे पदार्थों के देनेवाले सेना आदि के स्वामी! जो (जातूभर्मा) उत्पन्न हुए सांसारिक पदार्थों को धारण (श्रद्दधानः) और अच्छे कामों में प्रीति करनेवाले (विद्वान्) विद्वान् आप (अस्य) इस दुष्ट जन की (दासीः) नष्ट होनेहारी-सी दासी प्रधान (पुरः) नगरियों को (दस्यवे) दुष्ट काम करते हुए जन के लिए (विभिन्दन्) विनाश करते हुए (व्यचरत्) विचरते हो (सः) वह आप श्रेष्ठ सज्जनों के लिए (हेतिम्) सुख के बढ़ानेवाले वज्र को (आर्यम्) श्रेष्ठ वा अति श्रेष्ठों के इस (सहः) बल (द्युम्न) धन वा (ओजः) और पराक्रम को (वर्धय) बढ़ाया करो।

भावार्थ—जो मनुष्य समस्त डाकू, चोर, लवाड़, लम्पट, लड़ाई करनेवालों का विनाश और श्रेष्ठों को हर्षित कर शारीरिक और आत्मिक बल का सम्पादन कर धन आदि पदार्थों से सुख को बढ़ाता है वही सबको श्रद्धा करने योग्य है।

—ऋषिभाष्य

(४) यवं वृकेणाश्विना वपन्तेषं दुहन्ता मानुषाय दस्रा।
अभि दस्युं बकुरेणा धमन्तोरु ज्योतिश्चक्रथुरार्याय॥

—ऋग्वेद मण्डल १, सूक्त ११७, मन्त्र २१

अर्थ—हे (दस्रा) दुःख दूर करनेहारे! (अश्विना) सुख में रमे हुए सभासेनाधीशो! तुम दोनों (मानुषाय) विचारवान् मनुष्य के लिए (वृकेण) छिन्न-भिन्न करनेवाले हल आदि शस्त्र-अस्त्र से (यवम्) यव आदि अन्न के समान (वपन्ता) बोते और (इषम्) अन्न को (दुहन्ता) पूर्ण करते हुए तथा (आर्याय) ईश्वर के पुत्र के तुल्य वर्तमान धार्मिक मनुष्य के लिए (बकुरेण) प्रकाशमान सूर्य ने किया (ज्योतिः) प्रकाश जैसे अन्धकार को वैसे (दस्युम्) डाकू, दुष्ट प्राणी को (अभि,

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

धमन्ता) अग्नि से जलाते हुए (उरु) अत्यन्त बड़े राज्य को (चक्रथुः) करो।

भावार्थ—इस मन्त्र में लुप्तोपमालंकार है। राजपुरुषों को चाहिए कि प्रजाजनों में जो कण्टक, लम्पट, चोर, झूठा और कटु बोलनेवाले मनुष्य हैं उनको रोक खाती आदि कामों से युक्त वैश्य प्रजाजनों की रक्षा और खेती आदि कामों की उन्नति कर अत्यन्त विस्तीर्ण राज्य का सेवन करें॥ —ऋषिभाष्य

(५) **इन्द्रः समत्सु यजमानमार्यं प्रावद्विश्वेषु**
शतमूतिराजिषु स्वर्मीढेष्वाजिषु।
मनवे शासदव्रतान् त्वचं कृष्णामरन्धयद्
दक्षन्न विश्वं ततृषाणमोषति न्यर्शसानमोषति॥

—ऋग्वेद मण्डल १, सूक्त १३०, मन्त्र ८

अर्थ—जो (शतमूतिः) अर्थात् जिससे असंख्यात रक्षा होती वह (इन्द्रः) परम ऐश्वर्यवान् राजा (स्वर्मीढेषु) जिनमें सुख सिञ्चन किया जाता उन (आजिषु) प्राप्त हुए संग्रामों में धार्मिक शूरवीरों के समान (विश्वेषु) समग्र (समत्सु) संग्रामों में (यजमानम्) अभय के देनेवाले **(आर्यम्) उत्तम गुण-कर्म-स्वभाव पुरुष को** (प्रावत्) अच्छे प्रकार पाले वा (मनवे) विचारशील धार्मिक मनुष्य की रक्षा के लिए (अव्रतान्) दुष्ट आचरण करनेवाले डाकुओं को (शासत्) शिक्षा देवे और इनकी (त्वचम्) सम्बन्ध करनेवाली खाल को (कृष्णाम्) खैंचता हुआ (अरन्धयत्) नष्ट करे वा अग्नि जैसे (विश्वम्) सब पदार्थमात्र को (दक्षन्) जलाए और (ततृषाणम्) प्यासे प्राणी को (ओषाते) दाहे, अति जलन देवे (न) वैसे (अर्शसानम्) प्राप्त हुए शत्रुगण को (न्योषति) निरन्तर जलाए वही चक्रवर्ती राज्य करने योग्य होता है।

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालंकार हैं। मनुष्यों को चाहिए कि श्रेष्ठ गुण-कर्म-स्वभावों को स्वीकार और दुष्टों के गुण-कर्म-स्वभावों को त्यागकर श्रेष्ठों की रक्षा और दुष्टों को ताड़ना देकर धर्ममय राज्य की स्थापना करें। —ऋषिभाष्य

(६) **आ यो विवाय सचथाय दैव्य इन्द्राय विष्णुः सुकृते सुकृत्तरः।**
वेधा अजिन्वत्त्रिषधस्थ आर्यमृतस्य भागे यजमानमाभजत्॥

—ऋग्वेद मण्डल १, सूक्त १५६, मन्त्र ५

अर्थ—(यः) जो (दैव्यः) विद्वानों का सम्बन्धी (त्रिसधस्थः) कर्म, उपासना और ज्ञान इन तीनों में स्थित (सुकृत्तरः) अतीव कर्मवाला (विष्णुः) विद्या को प्राप्त (वेधाः) मेधावी धीरबुद्धि सज्जन (सचथाय) धर्म-सम्बन्ध को प्राप्त (सुकृते) धर्मात्मा (इन्द्राय) परमैश्वर्यवान् जन के लिए (ऋतस्य) सत्य के (भागे) सेवन के निमित्त (आर्यम्) समस्त शुभ गुण-कर्म और स्वभावों में वर्तमान (यजमानम्) विद्या देनेवाले को (आ, अभजत्) अच्छे प्रकार सेवे और जो सबको विद्या और शिक्षा देने से (अजिन्वत्) प्राण-पोषण करे वह पूरे सुख को (आ, विवाय) अच्छी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

प्रकार प्राप्त हो।

भावार्थ—जो विद्वानों के प्रिय किये जानने-माननेवाले सुकृति, सर्वविद्या-वेत्ता जन सत्यधर्म-विद्या पहुँचाने से सब जनों को सुख देते हैं वे अखिल सुख भोगनेवाले होते हैं। —ऋषि भाष्य

(७) **धिष्वा शवः शूर येन वृत्रमवाभिनद्दानुमौर्णवाभम्।**
अपावृणोज्ज्योतिरार्याय नि सव्यतः सादि दस्युरिन्द्र॥

—ऋग्वेद मण्डल २, सूक्त ११, मन्त्र १८

अर्थ—हे (शूर) दुःखविनाशक (इन्द्र) सूर्य के समान वर्तमान सेनापति! आप (येन) जिससे (शवः) बल को (धिष्व) धारण करो उससे जैसे सूर्य (दानुम्) जल देनेवाले (वृत्रम्) मेघ को (और्णवाभम्) उर्णा जिसकी नाभि में होती उसके पुत्र के समान अर्थात् जैसे वह किसी की देह का विदारण करे वैसे (अभिनत्) छिन्न-भिन्न करता है और (सव्यतः) दाहिनी ओर से (ज्योतिः) प्रकाश कर अन्धकार को (नि अप अवृणोः) निरन्तर दूर करता है वैसे (आर्याय) उत्तम के लिए साधारण होओ जो (दस्युः) दूसरे के पदार्थों को हरनेवाला है उसका विनाश करो ऐसे युद्ध के बीच विजय (सादि) साधना चाहिए।

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। राजपुरुषों को चाहिए कि जैसे सूर्य अन्धकार को वैसे अन्याय को निवृत्त कर सज्जनों के हृदयों में सुख प्राप्ति करा निरन्तर बल बढ़ावें। —ऋषिभाष्य

(८) **सनेम ये त ऊतिभिस्तरन्तो विश्वाः स्पृध आर्येण दस्यून्।**
अस्मभ्यं तत्त्वाष्ट्रं विश्वरूपमरन्धयः साख्यस्य व्रिताय॥

—ऋग्वेद मं० २, सूक्त ११, मंत्र १६

अर्थ—हे सेनापति! (ये) जो (ते) आपकी (ऊतिभिः) रक्षा आदि कामों की करनेवाली सेनाओं में (विश्वाः) समस्त (स्पृधः) स्पर्द्धा करनेवालों को (तरन्तः) उल्लंघन करते हुए हम लोग (व्रिताय) त्रिविध अर्थात् शारीरिक, वाचिक और मानसिक सुख जिसको प्राप्त उसके लिए (आर्येण) उत्तम विद्या और धर्म-सामर्थ्य के साथ (दस्यून्) डाकुओं को जीतें जो (साख्यस्य) मित्रपन वा मित्रकर्म करने का (विश्वरूपम्) विविध स्वरूप (त्वाष्ट्रम्) प्रकाशमान का रचा हुआ है उसको (सनेम) अलग-अलग करें (तत्) उसको आप (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिए सिद्ध करो और डाकुओं को (अरन्धयः) नष्ट करो।

भावार्थ—जो मनुष्य किये हुए को जाननेवाले विद्वान् को सेनापति का अधिकार कर श्रेष्ठ पुरुषों के साथ कर्तव्य और अकर्तव्य कामों को अच्छी प्रकार निश्चय कर प्रजा-सुख की सिद्धि करें वे सब सुखों को प्राप्त हों। —ऋषिभाष्य

(९) **ससानात्यां उत सूर्यं ससानेन्द्रः ससान पुरुभोजसं गाम्।**
हिरण्ययमुत भोगं ससान हत्वी दस्यून्प्रार्यं वर्णमावत्॥

—ऋक्० मं० ३, सू० ३४, मं० ९

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अर्थ—वह (इन्द्रः) सम्पूर्ण ऐश्वर्य से युक्त राजा वा मन्त्रियों का समूह (अत्यान्) उत्तम शिक्षा से घोड़ों के (ससान) विभाग को और (सूर्यम्) सूर्य के सदृश प्रतापयुक्त वीर पुरुष को (ससान) अलग करे (पुरुभोजसम्) बहुतों का पालन वा बहुतों को नहीं भोजन देनेवाले पुरुष की (गाम्) वाणी वा भूमि का (उत) और (हिरण्ययम्) सुवर्ण आदि पदार्थों का (ससान) विभाग करे। (उत) और (भोगम्) उत्तम भोजन आदि के पदार्थों का (ससान) विभाग करे वह पुरुष (दस्यून्) साहसकर्म करनेवाले चोर आदि का (हत्वी) नाश करके (आर्य्यम्) उत्तम गुण-कर्म-स्वभावयुक्त धार्मिक (वर्णम्) स्वीकार करने योग्य पुरुष की (प्र, आवत्) रक्षा करे।

भावार्थ—जो लोग उत्तम प्रकार परीक्षा करके भले और बुरे घोड़े, वीर पुरुष, न्यायाधीश, लक्ष्मी और उत्तम भोग का विभाग कर सकें वे ही पुरुष दुष्ट पुरुषों का नाश कर श्रेष्ठ पुरुषों की रक्षा कर सकें। —ऋषिभाष्य

(१०) **अहं भूमिमददामार्याय ।।**

—ऋक्० ४।२६।२

इस मन्त्र में 'आर्य' पद श्रेष्ठ, गोपालक कृषक के अर्थों में आया है। यहाँ पर 'अर्यः स्वामिवैश्ययोः' (अष्टाध्यायी—३।१।१०३) सूत्र के आधार से अर्य शब्द वैश्य के अर्थ में आया है और उससे अपत्य अर्थ में अण् प्रत्यय से आर्य पद बना है, अर्थात् गोपालक तथा कृषक की सन्तान।

(११) **उत त्या सद्य आर्या ।।**

—ऋक् ४।३०।१८

यहाँ पर 'आर्या' शब्द दो शत्रुओं के विशेषण में आया है, जिसका अर्थ होगा—अभिगन्तव्यौ—जिनपर आक्रमण करना चाहिए ऐसे महान् शत्रु।

(१२) **वित्वक्षणः समृतौ चक्रमासजोऽसुन्वतो विषुणः सुन्वतो वृधः।**
इन्द्रो विश्वस्य दमिता विभीषिणो यथावशं नयति दासमार्यः ।।

—ऋक् ५।३४।६

अर्थ—युद्ध में रथचक्र को वेगवान् करता है। दुष्टों का नाश करनेवाला इन्द्र अयजनशील से दूर रहता है और यजनशील की वृद्धि करता है। वह सब शत्रुओं का दमन करनेवाला है। वह भयंकर है। वह आर्य इन्द्र, अपनी इच्छानुसार दास अर्थात् विनाशकारी को अपने वश में कर लेता है।

(१३) **एकः कृष्टीरवनोरार्याय ।।**

—ऋक् ६।१८।३

इस मन्त्र में 'आर्य' पद कर्मशील मनुष्य के अर्थ में आया है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

(१४) **यया दासान्यार्याणि वृत्रा करः ।।**

—ऋक् ६।२२।१०

इस मन्त्र में 'आर्याणि' 'वृत्राणि'—शत्रु का प्रयोग है ।।

(१५) **आर्याय विशोऽव तारीर्दासीः ।।**

—ऋक् ६।२५।२

इस मन्त्र में 'आर्य' शब्द उत्तम गुणयुक्त, यजनशील व्यक्ति के लिए प्रयुक्त हुआ है ।

(१६) **त्वं ताँ इन्द्रोभयाँ अमित्रान्दासा वृत्राण्यार्या च शूर ।।**

—ऋक् ६।३३।३

यहाँ 'आर्या' शब्द 'वृत्राणि'—शत्रु के विशेषण में आया है, जिसका अर्थ होगा—महान् शत्रु ।

(१७) **हतो वृत्राण्यार्या ।।**

—ऋक् ६।६०।६

इस मन्त्र में भी 'आर्या' शब्द 'वृत्राणि' का विशेषण है। यहाँ भी अर्थ होगा—महान् शत्रु ।

(१८) **उरु ज्योतिर्जनयन्नार्याय ।।**

—ऋक् ७।५।६

इस मन्त्र में 'आर्य' शब्द कर्मशील व्यक्ति के लिए प्रयुक्त हुआ है ।

(१९) **आ योऽनयत्सधमा आर्यस्य ।।**

—ऋक् ७।१८।७

यहाँ 'आर्य' का अर्थ है—श्रेष्ठ, कर्मशील पुरुष ।

(२०) **तिस्रः प्रजा आर्या ज्योतिरग्राः ।**

—ऋक् ७।३३।७

इस मन्त्र में 'आर्याः' बहुवचन है और 'प्रजाः' के विशेषण में आया है, जिसका अर्थ है श्रेष्ठ ।

(२१) **दासा च वृत्रा हतमार्याणि च ।।**

—ऋक् ७।८३।१

यहाँ भी 'आर्याणि' पद वृत्रा=वृत्राणि=शत्रु का विशेषण है जिसका अर्थ होगा—महान् शत्रु ।

(२२) **आर्यस्य वर्धनमग्निम् ।।**

—ऋक् ८।१०३।१

यहाँ पर 'आर्य' शब्द श्रेष्ठ उत्तम गुणयुक्त व्यक्ति के लिए प्रयुक्त हुआ है ।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

(२३) कृण्वन्तो विश्वमार्यम् ।।

—ऋक् ९।६३।५

यहाँ 'आर्य' शब्द सोम के विशेषण में आया है। इसका अर्थ है कल्याणकारी।

(२४) एते धामान्यार्याः ।।

—ऋक् ९।६३।१४

इस मन्त्र में 'आर्याः' का अर्थ श्रेष्ठ उत्तम गुणयुक्त पुरुष है।

(२५) यदी विशो वृणते दस्ममार्याः ।।

—ऋक् १०।११।४

यहाँ भी 'आर्याः' 'विशः' का विशेषण है। अर्थ होगा—'श्रेष्ठ प्रजा'।

(२६) विदद् दासाय प्रतिमानमार्यः ।।

—ऋक् १०।१३७।३

इस मन्त्र में 'आर्य' शब्द इन्द्र के विशेषणरूप में आया है।

(२७) स्वर्मनवे ज्योतिरार्यम् ।।

—ऋक् १०।४३।४

यहाँ पर आर्य का अर्थ है श्रेष्ठ अर्थात् उत्तम। यहाँ 'आर्य' पद ज्योति के विशेषण में आया है।

(२८) न यो रर आर्यं नाम दस्यवे ।।

—ऋक् १०।४९।३

यहाँ 'आर्य' शब्द शत्रु के विशेषण में आया है। यहाँ अर्थ होगा—'अभिगन्तव्यः आर्यः' अर्थात् वह बलवान् शत्रु जिसपर आक्रमण किया जाए।

(२९) आर्या व्रताविसृजन्तो अधि क्षमि ।।

—ऋक् १०।६५।११

यहाँ 'आर्या' शब्द का अर्थ ईश्वरीय है, और यहाँ आर्या पद 'व्रत' के विशेषण में आया है—आर्याणि व्रतानि। यहाँ पर 'आर्या' शब्द 'वृत्राणि' शत्रु का विशेषण है जिसका अर्थ होगा—महान् शत्रु।

(३०) विचिन्वन्दासमार्यम् ।।

—ऋक् १०।८६।१९

इस मन्त्र में आर्य शब्द दास के विलोम अर्थ में आया है। यहाँ अर्थ होगा—कल्याणकारी, परोपकारी, श्रेष्ठ पुरुष ।।

(३१) दासस्य वा मघवन्नार्यस्य ।।

—ऋक् १०।१०२।३

यहाँ 'आर्य' शब्द शत्रु के विशेषण में आया है जिसका अर्थ है—महान्।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

(३२) **यो नो दास आर्यो वा पुरुष्टुतादेव इन्द्र युधये चिकेतति ।।**

—ऋक् १०।३८।३

इस मन्त्र में 'आर्य' शब्द शत्रु के लिए प्रयुक्त हुआ है। यहाँ अर्थ है—"अभिगन्तव्यः" वह महान् शत्रु जिस पर युद्ध के लिए अभिगमन (चढ़ाई) करनी चाहिए। यह 'ऋ गतिप्राणयोः' धातु से निष्पन्न होता है ।।

ऋग्वेद में 'आर्य' शब्द का विविध अर्थों में प्रयोग होने पर भी जातिविशेष के लिए जैसाकि पाश्चात्य मतानुयायियों का विचार है, कहीं प्रयोग नहीं हुआ है। जब आर्य कोई जाति ही नहीं है तब उसका बाहर से आना, यहाँ के तथाकथित आदिवासियों से युद्ध करना, उन्हें पराजित करना और दास बना लेना आदि मान्यताएँ स्वतः खण्डित हो जाती हैं।

भजन

आर्यों की सन्तान डरना क्या जाने।
जीव-आत्मा अमर ये मरना क्या जाने ।।

'नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि', पढ़ लो गीता की वाणी,
कृष्ण की साफ जवानी, फिर मोह-शोक नादानी
करना क्या जानें ।।१।।

परनारी मात समाना, और परधन मिट्टी जाना,
इस सिद्धान्त को जाना, तो फिर माल पराया
हरना क्या जानें ।।२।।

जीवन-पथ में बाधायें, चाहे कितनी भी आ जायें,
पर किंचित् न घबरायें, कभी वीर बहादुर आहें
भरना क्या जानें ।।३।।

जिन्होंने हमसे बात बिगाड़ी, हम आ गये तभी अगाड़ी,
बने अरि के लिए कुल्हाड़ी, "ताराचन्द" कदम पिछाड़ी
धरना क्या जानें ।।४।।

□

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

१०. वेद में सृष्टिकाल-विभाग

सृष्टि की आयु—

"शतं तेऽयुतं हायनान् द्वे युगे त्रीणि चत्वारि कृष्मः।"

—अथर्ववेद काण्ड ८, सूक्त २, मन्त्र २१

हम ४३२ दश हजार सौ अर्थात् दश लाख के शून्य दें, ४३२०००००० चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष "अंकानां वामतो गतिः" के अनुसार २-३-४ को ४३२ इस प्रकार रखकर ०००००० सात शून्य दश लाख के रख दें, यही सृष्टि की आयु है।

चार युगों के नाम—

कृतायादिनवदर्शं त्रेतायै कल्पिनं द्वापरायाधिकल्पिनमास्कन्दाय सभास्थाणुम्।

—यजुर्वेद अध्याय ३०, मन्त्र १८

कृतयुग के लिए, त्रेता के लिए, द्वापर के लिए (आस्कन्दाय) कलियुग के लिए।

अट्ठाईस (२८) नक्षत्र—

अष्टाविंशानि शिवानि।—अथर्ववेद काण्ड १९, सूक्त ८, मन्त्र २

ये अट्ठाईस (२८) नक्षत्र कल्याण करनेवाले हैं अर्थात् कोई नक्षत्र अशिव= अकल्याणकारी नहीं है, सभी शिव हैं।

अट्ठाईस (२८) नक्षत्रों के नाम—

सुहवमग्ने कृत्तिकारोहिणी चास्तु भद्रं मृगशिरः शमार्द्रा।
पुनर्वसू सूनृता चारु पुष्यो भानुराश्लेषा अयनं मघा मे॥२॥
पुण्यं पूर्वा फल्गुन्यौ चात्र हस्तश्चित्रा शिवा स्वाति सुखो मे अस्तु।
राधे विशाखे सुहवानुराधा ज्येष्ठा सुनक्षत्रमरिष्ट मूलम्॥३॥
अन्नं पूर्वा रासतां मे अषाढा ऊर्जं देव्युत्तरा आ वहन्तु।
अभिजिन्मे रासतां पुण्यमेव श्रवणः श्रविष्ठा कुर्वतां सुपुष्टिम्॥४॥

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आ मे महच्छतभिषग् वरीय आ मे द्वया प्रोष्ठपदा सुशर्म।
आ रेवती चाश्वयुजौ भगं म आ मे रयिं भरण्य आ वहन्तु ॥५॥

—अथर्ववेद काण्ड १९, सूक्त ७, मन्त्र २, ३, ४, ५

१-कृत्तिका, २-रोहिणी, ३-मृगशिरा, ४-आर्द्रा, ५-पुनर्वसु, ६-पुष्य, ७-आश्लेषा, ८-मघा, ९-पूर्वाफाल्गुनी, १०-उत्तराफाल्गुनी, ११-हस्त, १२-चित्रा, १३-स्वाति, १४-विशाखा, १५-अनुराधा, १६-ज्येष्ठा, १७-मूल, १८-पूर्वाषाढ़ा, १९-उत्तराषाढ़ा, २०-अभिजित्, २१-श्रवण, २२-श्रविष्ठा (धनिष्ठा), २३-शतभिषा, २४-पूर्वाभाद्रपदा, २५-उत्तराभाद्रपदा, २६-रेवती, २७-अश्विनी और २८-भरणी ये अट्ठाईस नक्षत्र हैं। इनमें अभिजित् को छोड़कर २७ का प्रयोग ज्योतिष में किया जाता है।

इन्हीं में से चित्रा से चैत्र, विशाखा से वैशाख, ज्येष्ठा से ज्येष्ठ, अषाढा से आषाढ, श्रवण से श्रावण, भाद्रपदा से भाद्रपद, अश्विनी से आश्विन, कृत्तिका से कार्तिक, मृगशिरा से मार्गशीर्ष, पुष्य से पौष, मघा से माघ और फाल्गुनी से फाल्गुन ये बारह मासों के नाम रक्खे गये हैं। नक्षत्रों के नाम वेद में होने से ये बारह मासों के नाम भी वैदिक ही हैं।

बारह मास—

पितरं द्वादशाकृतिम्। —अथर्व० ९।९।१२

वर्ष को बारह आकृतियों, बारह महीनोंवाला कहा है। अथर्व० ९।९।१३ में वर्ष को "द्वदशारम्" १२ अरों वाला कहा है।

वर्ष के १२ मास और ३६० दिन—

द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि क उ तच्चिकेत।
तत्राहतास्त्रीणि शतानि शङ्कवः षष्टिश्च खीला अविचाचला ये ॥

—अथर्ववेद काण्ड १०, सूक्त ८, मन्त्र ४

बारह प्रधियाँ (बारह मास) एक चक्र (एक वर्ष) (सूर्य के चारों ओर पृथिवी का एक चक्र ही एक वर्ष है) तीन नाभियाँ (मोटे-मोटे तीन ऋतु—४ मास सर्दी, ४ मास गर्मी, ४ मास वर्षा) हैं। कौन उसको जानता है! उसमें तीन सौ साठ खूँटियाँ लगी हैं—ऐसी कील जो तनिक भी हिलनेवाली नहीं हैं।

एक वर्ष में सात सौ बीस (७२०) दिन रात—

द्वादशारं नहि तज्जराय वर्वर्ति चक्रं परि द्यामृतस्य।
आ पुत्रा अग्ने मिथुनासो अत्र सप्त शतानि विंशतिश्च तस्थुः ॥

—अथर्ववेद ९।९।१३

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

बारह अरों वाला वह पुराना होने के लिए नहीं; वह ऋतु का चक्र आकाश के चारों ओर घूमता है। हे अग्ने! (विद्वान्) उसपर जोड़े (दिन-रात) सात सौ बीस ठहरे हुए हैं।

बारह महीनों के नाम—

मधवे स्वाहा माधवाय स्वाहा शुक्राय स्वाहा शुचये स्वाहा नभसे स्वाहा नभस्याय स्वाहा इषाय स्वाहोर्जाय स्वाहा सहसे स्वाहा सहस्याय स्वाहा तपसे स्वाहा तपस्याय स्वाहा ॐ हसस्पतये स्वाहा। —यजुर्वेद २२।३१

१-मधु=चैत्र, २-माधव=वैशाख, ३-शुक्र=ज्येष्ठ, ४-शुचि=आषाढ, ५-नभस=श्रावण, ६-नभस्य=भाद्रपद, ७-इष=आश्विन, ८-ऊर्ज=कार्तिक, ९-सहः=मार्गशीर्ष, १०-सहस्य=पौष, ११-तपस्=माघ, १२-तपस्य=फाल्गुन। वेद में १२ मासों के नाम हैं।

छह ऋतुओं के नाम—

ग्रीष्मस्ते भूमे वर्षाणि शरद्धेमन्तः शिशिरो वसन्तः।
ऋतवस्ते विहिता हायनीरहोरात्रे पृथिवी नो दुहाताम्॥

—अथर्ववेद १२।१।३६

हे भूमे! वर्ष को पूरा करनेवाले ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हेमन्त, शिशिर, वसन्त तेरे छह ऋतु जो नियम से आते हैं ये ऋतु तथा रात-दिन ये हमारे लिए दूध अर्थात् सारे भोज्य पदार्थ देवें।

किस-किस ऋतु के कौन-कौन मास हैं वा कौन-कौन-से महीनों की कौन-सी ऋतु हैं—

१-मधुश्च माधवश्च वासन्तिकावृतू। —यजु० १३।२५
मधु माधव (चैत्र-वैशाख) वसन्त ऋतु।

२-शुक्रश्च शुचिश्च ग्रैष्मावृतू। —यजु० १४।६
शुक्र और शुचि (ज्येष्ठ-आषाढ) ग्रीष्म ऋतु।

३-नभश्च नभस्यश्च वार्षिकावृतू —यजु० १४।१५
नभ और नभस्य (श्रावण-भादों) वर्षा ऋतु।

४-इषश्चोर्जश्च शारदावृतू। —यजु० १४।१६
इष और ऊर्ज (आश्विन-कार्तिक) शरद् ऋतु।

५-सहश्च सहस्यश्च हैमन्तिकावृतू। —यजु० १४।२७
सह और सहस्य (मार्गशीर्ष-पौष) हेमन्त ऋतु।

६-तपश्च तपस्यश्च शैशिरावृतू। —यजु० १५।५७
तप और तपस्य (माघ-फाल्गुन) शिशिर ऋतु।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

३० (तीस) दिन—

त्रिंशद् धाम वि राजति वाक् पतङ्गो अशिश्रियत् ।
प्रति वस्तोरहर्द्युभिः ।। —अथर्ववेद ६।३१।३

(सूर्य) तीस स्थानों पर शासन करता है अर्थात् तीस राशियों पर प्रकाशित होता है; ३० दिन=एक मास बनता है ।

दिन-रात—

तन्त्रमेके युवती विरूपे अभ्याक्रामं वयतः षण्मयूखम् ।
प्रान्या तन्तूंस्तिरते धत्ते अन्या नाप वृञ्जाते न गमातो अन्तम् ।।
—अथर्व० १०।७।४२

दो विपरीत रूपोंवाली युवतियाँ (काली-गोरी, रात-दिन) छह खूँटियों, छह ऋतुओं पर ताना-बाना बुन रही हैं ।

अहोरात्रे प्र जायेते । —अथर्व० १०।८।२३

दिन-रात उत्पन्न होते हैं ।

अहोरात्राणि विदधत् । —ऋक् १०।१९०।२

परमेश्वर ने दिन और रात्रि को बनाया । ३० दिन का मास ।

तिथि और देवता—

तिथियों और तिथियों के देवताओं का कुछ मूल-सा यजुर्वेद अध्याय २५, मन्त्र ४-५-६ में दिखाई दिया है । इन तीन मन्त्रों को आगे अर्थसहित उद्धृत किया जाता है—

पहला मन्त्र

अग्ने पक्षतिर्वायोर्निपक्षतिरिन्द्रस्य तृतीया सोमस्य चतुर्थ्यदित्यै पञ्चमीन्द्राण्यै षष्ठी मरुताꣳ सप्तमी बृहस्पतेरष्टम्यर्यम्णो नवमी धातुर्दशमीन्द्रस्यैकादशी वरुणस्य द्वादशी यमस्य त्रयोदशी । —यजु० २५।४

अर्थ—हे मनुष्यो ! तुम (अग्ने) अग्नि के (पक्षतिः) पक्ष=स्वीकार करने का मूल, (वायोः) वायु के (निपक्षतिः) निश्चितपक्ष=स्वीकार करने का मूल, (इन्द्रस्य) इन्द्र की (तृतीया) तीसरी, (सोमस्य) चन्द्रमा की (चतुर्थी) चौथी (अदित्यै) अन्तरिक्ष=आकाश की (पञ्चमी) पाँचवीं, (इन्द्राण्यै) इन्द्र विद्युत् की स्त्री के तुल्य दीप्ति की (षष्ठी) छठी, (मरुताम्) वायुओं की (सप्तमी) सातवीं, (बृहस्पतेः) बड़ों के पालक महत्तत्त्व की (अष्टमी) आठवीं, (अर्यम्ण) अर्य=स्वामी जनों के सत्कार करनेवाले पुरुष की (नवमी) नौवीं, (धातुः) धारण करनेवाले पुरुष की (दशमी) दसवीं, (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान् पुरुष की (एकादशी)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ग्यारहवीं, (वरुणस्य) श्रेष्ठ पुरुष की (द्वादशी) बारहवीं, और (यमस्य) न्यायाधीश की (त्रयोदशी) तेरहवीं क्रियाओं को करो।

दूसरा मन्त्र—

इन्द्राग्न्योः पक्षतिः सरस्वत्यै निपक्षतिर्मित्रस्य तृतीयापां चतुर्थी निर्ऋत्यै पञ्चम्यग्नीषोमयोः षष्ठी सर्पाणाꣳ सप्तमी विष्णोरष्टमी पूष्णो नवमी त्वष्टुर्दशमीन्द्रस्यैकादशी वरुणस्य द्वादशी यम्यै त्रयोदशी द्यावापृथिव्योर्दक्षिणं पार्श्वं विश्वेषां देवानामुत्तरम्। —यजु० २५।५

अर्थ—हे मनुष्यो ! तुम=(इन्द्राग्नयोः) वायु और अग्नि के (पक्षतिः) पक्ष=स्वीकार करने के मूल, (सरस्वत्यै) सरस्वती=वाणी के (निपक्षतिः) निश्चित पक्ष=स्वीकार करने के मूल, (मित्रस्य) मित्र की (तृतीया) तीसरी, (अपाम्) जलों की (चतुर्थी) चौथी, (निर्ऋत्यै) भूमि की (पञ्चमी) पाँचवीं, (अग्नीषोमयोः) शीत और उष्णकारक जल और अग्नि की (षष्ठी) छठी, (सर्पाणाम्) साँपों की (सप्तमी) सातवीं, (विष्णोः) विष्णु की (अष्टमी) आठवीं, (पूष्णः) पोषक की (नवमी) नौवीं, (त्वष्टुः) प्रदीप्त सूर्य की (दशमी) दसवीं, (इन्द्रस्य) जीव की (एकादशी) ग्यारहवीं, (वरुणस्य) श्रेष्ठजन की (द्वादशी) बारहवीं, (यम्यै) यम=न्यायकर्त्ता स्त्री की (त्रयोदशी) तेरहवीं क्रिया को जानो। (द्यावापृथिव्योः) प्रकाश और भूमि के (दक्षिणम्) दाहिने (पार्श्वम्) भाग को और (विश्वेषाम्) सब (देवानाम्) विद्वानों के (उत्तरम्) उत्तर भाग को जानो।

तीसरा मन्त्र—

मरुताꣳ स्कन्धा विश्वेषां देवानां प्रथमा कीकसा रुद्राणां द्वितीयादित्यानां तृतीया वायोः पुच्छमग्नीषोमयोर्भासदौ क्रुञ्चौ श्रोणिभ्यामिन्द्राबृहस्पतीऽऊरुभ्यां मित्रावरुणावल्गाभ्यामाक्रमणꣳ स्थूराभ्यां बलं कुष्ठाभ्याम्। —यजु० २५।६

अर्थ—हे मनुष्यो ! तुम—(मरुताम्) मनुष्यों के (स्कन्धाः) कन्धे (विश्वेषाम्) सब (देवानाम्) विद्वानों की (प्रथमा) प्रथम क्रिया (कीकसा) अत्यन्त शासन (रुद्राणाम्) रुद्रों की (द्वितीया) दूसरी ताड़नक्रिया (आदित्यानाम्) अखण्डित न्यायाधीशों की (तृतीया) तीसरी न्यायक्रिया, (वायोः) वायु सम्बन्धी (पुच्छम्) पशु की पूँछ (अग्नीषोमयोः) सूर्य और चन्द्र-सम्बन्धी (भासदौ) भास=प्रकाश देनेवाले (क्रुञ्चौ) दो सारस पक्षी, (श्रोणिभ्याम्) कटिप्रदेशों के लिए (इन्द्राबृहस्पती) वायु और सूर्य (ऊरुभ्याम्) जाँघों के लिए (मित्रावरुणौ) प्राण और उदान (अल्गाभ्याम्) अत्यन्त गति करनेवाली ऊरुसन्धियों के लिए (आक्रमणम्) आक्रमण=गतिविशेष (स्थूराभ्याम्) स्थूल (कुष्ठाभ्याम्) नितम्बस्थ कूपकों के लिए (बलम्) बल सिद्ध करो।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ग्यारहवीं, (वरुणस्य) श्रेष्ठ पुरुष की (द्वादशी) बारहवीं, और (यमस्य) न्यायाधीश की (त्रयोदशी) तेरहवीं क्रियाओं को करो।

दूसरा मन्त्र—

इन्द्राग्न्योः पक्षतिः सरस्वत्यै निपक्षतिर्मित्रस्य तृतीयापां चतुर्थी निर्ऋत्यै पञ्चम्यग्नीषोमयोः षष्ठी सर्पाणाᳬ सप्तमी विष्णोरष्टमी पूष्णो नवमी त्वष्टुर्दशमीन्द्रस्यैकादशी वरुणस्य द्वादशी यम्यै त्रयोदशी द्यावापृथिव्योर्दक्षिणं पार्श्वं विश्वेषां देवानामुत्तरम्। —यजु० २५।५

अर्थ—हे मनुष्यो ! तुम=(इन्द्राग्नयोः) वायु और अग्नि के (पक्षतिः) पक्ष=स्वीकार करने के मूल, (सरस्वत्यै) सरस्वती=वाणी के (निपक्षतिः) निश्चित पक्ष=स्वीकार करने के मूल, (मित्रस्य) मित्र की (तृतीया) तीसरी, (अपाम्) जलों की (चतुर्थी) चौथी, (निर्ऋत्यै) भूमि की (पञ्चमी) पाँचवीं, (अग्नीषोमयोः) शीत और उष्णकारक जल और अग्नि की (षष्ठी) छठी, (सर्पाणाम्) साँपों की (सप्तमी) सातवीं, (विष्णोः) विष्णु की (अष्टमी) आठवीं, (पूष्णः) पोषक की (नवमी) नौवीं, (त्वष्टुः) प्रदीप्त सूर्य की (दशमी) दसवीं, (इन्द्रस्य) जीव की (एकादशी) ग्यारहवीं, (वरुणस्य) श्रेष्ठजन की (द्वादशी) बारहवीं, (यम्यै) यम=न्यायकर्त्ता स्त्री की (त्रयोदशी) तेरहवीं क्रिया को जानो। (द्यावापृथिव्योः) प्रकाश और भूमि के (दक्षिणम्) दाहिने (पार्श्वम्) भाग को और (विश्वेषाम्) सब (देवानाम्) विद्वानों के (उत्तरम्) उत्तर भाग को जानो।

तीसरा मन्त्र—

मरुताᳬ स्कन्धा विश्वेषां देवानां प्रथमा कीकसा रुद्राणां द्वितीयादित्यानां तृतीया वायोः पुच्छमग्नीषोमयोर्भासदौ क्रुञ्चौ श्रोणिभ्यामिन्द्राबृहस्पतीऽऊरुभ्यां मित्रावरुणावलगाभ्यामाक्रमणꣳ स्थूराभ्यां बलं कुष्ठाभ्याम्। —यजु० २५।६

अर्थ—हे मनुष्यो ! तुम—(मरुताम्) मनुष्यों के (स्कन्धाः) कन्धे (विश्वेषाम्) सब (देवानाम्) विद्वानों की (प्रथमा) प्रथम क्रिया (कीकसा) अत्यन्त शासन (रुद्राणाम्) रुद्रों की (द्वितीया) दूसरी ताड़नक्रिया (आदित्यानाम्) अखण्डित न्यायाधीशों की (तृतीया) तीसरी न्यायक्रिया, (वायोः) वायु सम्बन्धी (पुच्छम्) पशु की पूँछ (अग्नीषोमयोः) सूर्य और चन्द्र-सम्बन्धी (भासदौ) भास=प्रकाश देनेवाले (क्रुञ्चौ) दो सारस पक्षी, (श्रोणिभ्याम्) कटिप्रदेशों के लिए (इन्द्राबृहस्पती) वायु और सूर्य (ऊरुभ्याम्) जाँघों के लिए (मित्रावरुणौ) प्राण और उदान (अलगाभ्याम्) अत्यन्त गति करनेवाली ऊरुसन्धियों के लिए (आक्रमणम्) आक्रमण=गतिविशेष (स्थूराभ्याम्) स्थूल (कुष्ठाभ्याम्) नितम्बस्थ कूपकों के लिए (बलम्) बल सिद्ध करो।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

भजन

प्रभु निराकार है, महिमा अपरम्पार है।
शरण में जो आ गया, उसका बेड़ा पार है॥
सूरज चाँद बनाये तुमने, तारे भी चमकाये हैं, तारे भी……
विना हाथों के पहाड़ बनाये, सुन्दर फूल खिलाए हैं, प्रभु सुन्दर……
वादल गरजे विजली चमके, छम छम वर्षा आती है, छम……
मीठे स्वर से कोयल वोले, ये ही राग सुनाती है, प्रभु ये ही……
ऋषि मुनि और देवी देवता, तेरे ही गुण गाते हैं, तेरे ही……
वेदशास्त्र सव गाकर थक गये, तेरा पार न पाते हैं, प्रभु तेरा पार……
सत् चित् आनन्द प्रभु को वेदों में वतलाया है, वेदों में……
अखिल अगोचर अभय अजन्मा, अद्भुत तेरी माया है, अद्भुत……

□

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

११. वेद में छह दोषों के त्याग का उपदेश

अथर्ववेद में मन्त्र आता है—

उलूकयातुं शुशुलूकयातुं जहि श्वयातुमुत कोकयातुम्।
सुपर्णयातुमुत गृध्रयातुं दृषदेव प्र मृण रक्ष इन्द्र॥

—अथर्व० ८।४।२२

अर्थ—हे (इन्द्र) जीवात्मन्! उल्लू, भेड़िया, कुत्ता, चिड़िया, गरुड़ और गीध की चाल को छोड़ दे और इन राक्षसी भावनाओं को पत्थर के समान कठोर साधन से नष्ट कर दे।

इस मन्त्र में जिन पशु-पक्षियों का उल्लेख किया गया है, उनमें से प्रत्येक को एक-एक आसुरी प्रवृत्ति का प्रतीक मानकर उस दोष के उन्मूलन की शिक्षा दी गई है।

१. उल्लू की चाल

उलूकयातुम्—यह पक्षी अन्धेरे को पसन्द करता है और सूर्य के प्रकाश से छिपकर बैठता है। इसी प्रकार आसुरी वृत्ति का व्यक्ति अज्ञानरूपी अन्धकार में ही रहना चाहता है और ज्ञान के प्रकाश से अपने को दूर रखता है। उल्लू के सम्बन्ध में नीतिकार कहता है—

यद्यपि तरणेः किरणैः सकलमिदं विश्वमुज्ज्वलं विदधे।
तदपि न पश्यति घूकः पुराकृतं भुज्यते कर्म॥

यद्यपि सूर्य के प्रकाश से सारा विश्व उज्ज्वल हो गया है, उल्लू फिर भी प्रकाश को नहीं देखता। यह पूर्वजन्म के कर्म का ही फल है।

जिस समय मुस्लिम आक्रान्ता इस देश में एक हाथ में तलवार और दूसरे में कुरान लेकर आये और भारत के बृहत् पुस्तकालयों को जलाकर हमाम का पानी गर्म करने लगे, उस समय ज्ञान के भण्डार इन पुस्तकों को यह कहकर आग लगाई कि यदि इन पुस्तकों में कुरान के विरुद्ध है, तब इनका नाश करना ही होगा और यदि कुरान के अनुकूल हैं तो सब कुरान में विद्यमान हैं—इसलिए अन्य किसी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai
पुस्तक की क्या आवश्यकता है ? कई पुस्तकालय छह-छह मास तक जलते रहे। ये मुस्लिम आक्रान्ता जिस-जिस देश में भी गये, वहाँ पुस्तकालयों, विद्यालयों को नष्ट-भ्रष्ट करने और विद्वानों-ज्ञानियों की निर्मम हत्या करने में ही इस्लाम का कल्याण समझा। क्या यह उल्लू की तरह ज्ञान और प्रकाश से द्वेष और अन्धकार से प्रेम नहीं है ? इसी प्रकार कई मनुष्य अपने मस्तिष्क की खिड़कियों, दरवाजों को बन्द कर अज्ञान-अन्धकार में ही रहना पसन्द करते हैं।

२. भेड़िये की चाल

शुशुलूकयातुम्—भेड़िया बड़ा क्रूर और द्वेषी होता है। ईर्ष्या-द्वेष एक ही आसुरी वृत्ति के दो पहलू हैं। द्वेष का अभिप्राय दूसरे की उन्नति को देख अपने हृदय में जलन पैदा करना है। सन्ध्या के मनसा-परिक्रमा के छह मन्त्रों में चारों दिशाओं और ऊपर-नीचे प्रभु का ध्यान करते हुए प्रत्येक मन्त्र के अन्त में यही प्रार्थना की गई है कि—

योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः।

जो हमसे द्वेष करता है अथवा जिससे हम द्वेष करते हैं—दोनों को हे प्रभु ! तुम्हारे न्याय के अर्पण करते हैं। जिस समय दोनों प्रभु के न्याय के अर्पित हो गये, उस समय द्वेष की भावना कहाँ रह सकती है ? ईर्ष्या और द्वेष के वशीभूत मनुष्य पहले अपनी अनायास सफलता से बड़ा प्रसन्न होता है, पर यह खुशी अग्नि की लपट के समान होती है जो पड़ोसी के घर को जलते देखने से पैदा होती है। द्वेषी व्यक्ति यह भूल जाता है कि पड़ोसी के घर में लगी आग की लपटें उसके घर को भी भस्मसात् कर सकती हैं। ईर्ष्या-द्वेष खाज के समान पहले तो मजेदार लगती है, पर वही खाज जब कोढ़ का रूप धारण कर लेती है तब पीड़ा होती है। मन्थरा दासी द्वारा कैकेयी के हृदय में जब ईर्ष्या की अग्नि भड़काई गई, तभी राम को युवराज-पद का त्याग कर वनवास जाना पड़ा। महाभारत के घातक युद्ध का एकमात्र कारण पारिवारिक ईर्ष्या ही तो थी। तब से लेकर सदियों तक भारत-देश इसी भयंकर रोग के फलस्वरूप विदेशियों का गुलाम रहा। नीतिकार कहते हैं—

दिवा पश्यति नोलूकः काकः नक्तं न पश्यति।
अपूर्वः कोऽपि ईर्ष्यान्धः दिवा नक्तं न पश्यति॥

उल्लू दिन में नहीं देखता, कौवा रात को नहीं देखता, पर यह ईर्ष्यालु व्यक्ति ऐसा है जो दिन-रात दोनों में ही नहीं देखता।

काकः पक्षिषु चाण्डालः स्मृतः पशुषु गर्दभः।
नराणां कोऽपि चाण्डालः स्मृतः सर्वेषु ईर्ष्यकः॥

पक्षियों में कौआ चाण्डाल है, पशुओं में गधा। मनुष्यों में वह चाण्डाल है जो ईर्ष्यालु है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

३. कुत्ते की चाल

श्वयातुम्—कुत्ता बड़ा स्वामिभक्त पशु माना जाता है। उसकी स्वामिभक्ति के कई सच्चे उदाहरण इतिहास में मिलते हैं। कुत्ते की घ्राण-शक्ति बड़ी तीव्र होती है। आज के वैज्ञानिक युग में कुत्ते की इस घ्राण-शक्ति की सहायता से पुलिस कई बार अपराधियों की खोज करने और पकड़ने में सफल हो जाती है। कुत्ता चुस्त और वफादार चौकीदार है। आजकल कुत्तों की नस्ल सुधारने के अनेक प्रयत्न किये जा रहे हैं। कुत्तों की सहज बुद्धि की परख के लिए "कुत्ता प्रदर्शनी" नगरों में आयोजित होती रहती है।

फिर भी इस मन्त्र में कुत्ते की चाल को आसुरी वृत्ति में क्यों गिना गया है? इतने गुणों के होते हुए भी कुत्ते में दो बड़े दोष हैं—पहला स्वजाति विद्रोह, कुत्ता दूसरे कुत्ते को देख अवश्य भौंकेगा और उसका भरसक विरोध करेगा; दूसरा दोष—चाटुकारिता है। अपने मालिक के सामने पेट दिखाकर लेट जाएगा और उसके पैर चाटेगा। नीतिकार के शब्दों में—

लांगूलचालनमधश्चरणावपातनम्।
भूमौ निपत्य वदनोदरदर्शनं च॥

पूंछ हिलाते हुए पैरों के पास गिर जाना और भूमि पर लेट अपना पेट दिखाना—ये चाटुकारिता के रूप हैं। कुत्ते की पूंछ हमेशा टेढ़ी रहती है। कहावत है १२ साल तक उसकी पूंछ को बाँस की नली में रख सीधा किया गया, पर नली के हटाते ही फिर टेढ़ी-की-टेढ़ी ही पाई गई। इसी प्रकार दुराग्रही पुरुष लाख समझाने पर भी दुराग्रह नहीं छोड़ता।

कुत्ते के सदृश इन आसुरी प्रवृत्तियों का त्याग करना चाहिए।

४. चिड़े की चाल

कोकयातुम्—कोक कहते हैं चिड़े को। यह बड़ा कामातुर होता है। काम-वासना एक भयंकर आसुरी वृत्ति है। गीता १६।२१ में काम, क्रोध और लोभ इन तीनों को नरक का द्वार कहा गया है। काम के विषय में नीतिकार कहते हैं—

कामातुराणां न भयं न लज्जा।
अन्धी करोमि भुवनं बधिरी करोमि जगत्॥

काम में फँसे व्यक्ति के लिए भय और लज्जा दोनों का नाश हो जाता है। काम कहता है कि "जो मेरा शिकार बन गया, उसके लिए संसार अन्धा और बहरा हो जाता है।" कामातुर व्यक्ति अपनी क्षणिक वासना की पूर्ति के लिए नीच-से-नीच उपाय का अवलम्बन करने में भी संकोच नहीं करता।

यहाँ यह शंका की जा सकती है कि जीवन के चार पुरुषार्थ धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष में काम का तीसरा स्थान है और मोक्ष से पहले है। तब काम की इतनी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai
निन्दा क्यों ? इसका उत्तर यह है कि यहाँ काम का अर्थ शुभ इच्छाओं की पूर्ति है। गीता के दूसरे अध्याय में "स्थितप्रज्ञ" का लक्षण बताते हुए "काम" शब्द का प्रयोग इच्छा के लिए ही किया गया। मनुस्मृति के निम्न श्लोक में भी 'काम' शब्द का प्रयोग इच्छा के लिए ही हुआ है—

कामात्मता न प्रशस्ता न चैवेह्यास्त्यकामता।
काम्यो हि वेदाधिगमः कर्मयोगश्च वैदिकः॥

अत्यन्त काम अर्थात् इच्छा का होना प्रशंसनीय नहीं है और न ही इच्छा का सर्वथा अभाव उचित है, क्योंकि जो कामनारहित है, वह तो कोई भी क्रिया नहीं कर पाता। मुण्डक उपनिषद् ३।२।२ के निम्न श्लोक में भी "काम" का प्रयोग इच्छा के लिए हुआ है—

कामान् यः कामयते मन्यमानः स कामभिर्जायते तत्र-तत्र।

कामनाओं को ही मानता हुआ जो-जो इच्छा करता है, वह इन इच्छाओं के फलस्वरूप उस-उस योनि में ही जाता है।

पर यहाँ कोक पक्षी के उदाहरण से जिस काम को त्याज्य और गर्हित बताया गया है, वह काम के उस स्वरूप का नाम है जो "वासना" बन मनुष्य को अमर्यादित कर देती है। इसे "कामातुरता" अथवा "कामवासना", "विषयभोग", मैथुन और व्यभिचार भी कहा जाता है।

५. गरुड़ की चाल

सुपर्णयातुम्—गरुड़ को अपने "पक्षराज" और सुन्दर होने का अभिमान होता है। अभिमान का अभिप्राय है, अपने वास्तविक स्वरूप को भूल स्वयं को बहुत बड़ा समझना। इसमें दूसरों के प्रति हीनता और घृणा की भावना छिपी होती है। नीतिकार के शब्दों में—

ईर्ष्यी घृणी त्वसन्तुष्टः क्रोधनो नित्यशंकितः।
परभाग्योपजीवी च षडेते दुःखभागिनः॥

दूसरों के प्रति ईर्ष्या और घृणा करनेवाला, असन्तुष्ट, क्रोधी, सदा सन्देह करनेवाला और दूसरों की कृपा पर ही जीनेवाला,—ये छह प्रकार के व्यक्ति सदा दुःख प्राप्त करते हैं। अहंकार और क्रोध का अटूट सम्बन्ध है। जिस समय अहंकारी की इष्ट सिद्धि नहीं होती, तब क्रोध से आगबबूला हो अनाप-सनाप काम करने लगता है।

अहंकार कई प्रकार का है। जन्म, कुल, जाति, परिवार, देश, विद्या, रंग, इत्यादि से सम्बद्ध अहंकार मानव का अधःपतन कर देता है। हिन्दुओं में सवर्णों को अपनी तथाकथित उच्च जाति के अभिमान का फल यह हुआ कि तथाकथित निम्न वर्ण के शूद्र इत्यादि के प्रति घृणा और छुआ-छूत के भाव उग्र हो गये। इन

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

निम्न वर्णवालों पर सवर्णों ने घोर अत्याचार सदियों तक किये। परिणामस्वरूप उनमें से अधिकांश विधर्मी हो गये। अपने ही अंग कट जाने से हिन्दू जाति कई टुकड़ों में बँट आज निर्बल हो गई है। रंग का भी अभिमान आज विश्व के कई देशों में है। अमेरिका में काले नीग्रो को गोरे अमेरिकी घृणा की दृष्टि से देखते हैं।

दक्षिण अफ्रीका में काले रंग के अफ्रीकी और एशियाई मौलिक अधिकारों से भी वंचित हैं। विद्या के अभिमान में आकर एक-दूसरे को अपमानित करने का प्रयत्न करते रहते हैं। विद्वानों की इस फूट से देश गड्ढे में गिरा जाता है। रूप और धन का अभिमान भी कम नाशक नहीं होता। जिस समय द्रौपदीसहित पाण्डव दूसरे राजसूय यज्ञ के बाद हिमालय की यात्रा करने लगे, उस समय सबसे पहले द्रौपदी गिरी और उसका शरीरान्त हो गया। भीम ने युधिष्ठिर से पूछा कि—"ऐसी बुद्धिमती और धर्मनिष्ठ देवी का सबसे पहले देहपात क्यों हुआ?" तब युधिष्ठिर ने कहा, "द्रौपदी को अपने रूप का बड़ा अभिमान था।" मुग़ल इतिहास में नूरजहाँ ने अपने सौन्दर्य के गर्व में बादशाह जहाँगीर को सर्वथा बेकार ही नहीं कर दिया था, अपितु मुगल राज्यों को भी पतनोन्मुख कर दिया। धन के अभिमान में आकर मनुष्य अपने-आपको बड़ा शक्ति-सम्पन्न समझने लगता है, पर यह भूल जाता है कि बड़े-से-बड़े धनाढ्य के पास भी लक्ष्मी सदा नहीं रहती। यह तो बड़ी चंचल है। नीतिकार कहते हैं—

विद्या विवादाय धनं मदाय,
शक्तिः परेषां परिपीडनाय।
खलस्य साधोर्विपरीतमेतद्,
ज्ञानाय दानाय च रक्षणाय॥

अभिमानी के पास विद्या विवाद के लिए, धन मनमस्ती के लिए और बल दूसरों को पीड़ा देने के लिए होते हैं। पर सज्जन के पास विद्या ज्ञान के लिए धन दान के लिए और शक्ति निर्बलों की रक्षा के लिए होती है।

६. गीध की चाल

गृध्रयातुम्—गीध बड़ा लालची और लोभी होता है। गीध ऊँचा उड़ सकता है, पर उसकी दृष्टि भूमि पर पड़े मांस पर ही होती है। वृक्ष की चोटी पर भी बैठकर वह नीचे शिकार की ताक में ही रहता है।

लोभः पापस्य कारणम्।

लोभ पाप का मूल है। नीतिकार कहते हैं—

नास्ति कामसमो व्याधिर्नास्ति लोभसमो रिपुः।
नास्ति ईर्ष्यासमो वह्निर्नास्ति ज्ञानात्परं सुखम्॥

काम के सदृश रोग नहीं, लोभ के सदृश शत्रु नहीं, ईर्ष्या के समान कोई अग्नि

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

नहीं और ज्ञान से अधिक सुखदायक नहीं। लोभी-लालची सदा अपने ही स्वार्थ को देखता है; दूसरे का हानि-लाभ नहीं। बिल्ली रसोई में पड़े दूध को पीने के लिए जाती है, पर यह नहीं देखती कि हाथ में लाठी लिये घर का मालिक उसके सिर पर खड़ा है। ऐसे ही लोभी तात्कालिक लाभ को ही देखता है, उसके भयंकर परिणामों को नहीं समझता। गीता में श्रीकृष्ण ने नरक के तीन द्वारों में एक लोभ को भी कहा है।

मानव पाँच दोषों का पुतला—

इन पशु-पक्षियों द्वारा इस मन्त्र में आसुरी वृत्तियों से बचने की शिक्षा दी गयी है। एक नीतिकार ने निम्न श्लोक द्वारा अन्य पशु-पक्षियों का वर्णन कर मनुष्य को राक्षसी मार्ग का त्याग करने की चेतावनी दी है—

कुरङ्गमातङ्गपतङ्गभृङ्गमीना हताः पञ्चभिरेव पंच।
एकः प्रमादी स कथं न हन्यते यः सेव्यते पञ्चभिरेव पंच॥

हिरण कान में पड़ी ध्वनि से, हाथी हथिनी के साथ स्पर्श से, पतंगा दीपक के रूप से, भ्रमर फूल की सुगन्ध से, मछली जिह्वा के स्वाद से—ये पाँचों प्राणी केवल एक-एक इन्द्रिय के विषय की गुलामी से मारे जाते हैं, पर हे प्रमादी पुरुष ! तू तो पाँचों विषयों का दास है। तेरी क्या दशा होगी, क्या तूने कभी यह सोचा ?

इस विषय का एक भजन

मानव तू क्यों ढोये फिरता, पापों की गठरिया।
विषय-विकारों में फँसकर के खोये क्यों उमरिया॥टेक॥

बड़े भाग्य से नर-तन पाया, क्या तुमको मालूम नहीं।
प्रभु-भजन में मन नहीं लागे, क्या यह तेरी भूल नहीं ?
रो-रो तूने सारी खो दी जीवन की उमरिया॥१॥

काम क्रोध और लोभ में फँसकर क्यों जीवन बर्बाद किया ?
सुख में सुमरा न नाम उसका, दुःख में तूने याद किया।
इसीलिए तू काट रहा है जन्म-मरण-चकरिया॥२॥

ओ३म् नाम को जप ले बन्दे, जीवन सफल बना ले तू।
गर ईश्वर को तूने पाना, मन-मन्दिर में पा ले तू॥
'पथिक' यूँ ही बीत न जाये जीवन की उमरिया॥३॥

□

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

'महात्मा हंसराज ग्रंथावली' एक ऐतिहासिक प्रयास

—प्राध्यापक राजेन्द्र 'जिज्ञासु', वेद सदन, अबोहर

महात्मा हंसराज ने १८८५ ई० में पंजाब विश्वविद्यालय से बी० ए० पास किया। वह विश्वविद्यालय में द्वितीय रहे। प्रथम स्थान पं० गुरुदत्त जी विद्यार्थी ने प्राप्त किया। पं० जी ने तो अपनी शिक्षा आगे जारी रखी परन्तु महात्मा हंसराज ने १८८६ ई० में डी० ए० वी० स्कूल लाहौर की अवैतनिक सेवा के लिए तथा ऋषि-मिशन के लिए अपना जीवन भेंट कर दिया। हुतात्मा महाशय राजपाल जी ने लिखा है कि आर्यसमाज के लिए जीवन-दान करनेवाले प्रथम स्नातक (Graduate) हंसराज ही थे। भारत में शिक्षा-प्रसार वा समाज-सेवा के लिए जीवन भेंट करनेवाले प्रथम गृहस्थी स्नातक भी हमारे हंसराज ही थे।

हंसराज अपने तप-त्याग के कारण एक व्यक्ति का नाम न रहकर एक विशेषण बन गया। आर्यसमाज से बाहर के लोगों के लिए भी हंसराज तपस्या व सेवा का एक आदर्श बन गये। उनके नाम व काम की कीर्ति से डी० ए० वी० संस्थाओं का अद्भुत विस्तार-प्रसार हुआ। महात्मा जी के जीवन-समर्पण के शताब्दी वर्ष के साथ ही डी० ए० वी० आन्दोलन का यह शताब्दी वर्ष है। इस अवसर पर गोविन्दराम हासानन्द ने 'महात्मा हंसराज ग्रन्थावली' चार खण्डों में प्रकाशित करने का ऐतिहासिक प्रयास किया है। इसे ऐतिहासिक प्रयास हम इसलिए भी कहेंगे कि आज तक किसी भी आर्यसमाजी नेता व विद्वान् के प्रवचनों वा लेखों के एक-साथ इतने (चार) संग्रह कभी नहीं छापे गये। न ही किसी आर्यसमाजी नेता के प्रवचनों व लेखों की इतनी व्यापक खोज की गई है। लेखों तथा प्रवचनों के विषय में हम आगे कुछ कहेंगे, पहले महात्मा जी के जीवन-चरित के बारे में कुछ निवेदन करते हैं।

महात्मा हंसराज ग्रन्थावली का प्रथम भाग **'तपोनिधि महात्मा हंसराज और उनका युग'** नाम से छपा है। इस ग्रन्थ की साज-सज्जा, कागज तथा छपाई की सुन्दरता के विषय में हमें कुछ भी कहने की आवश्यकता नहीं। पुस्तक देखते ही

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सब इसके Get up पर मुग्ध हो जाते हैं। इससे पूर्व भी महात्मा जी के आधा दर्जन के लगभग जीवन-चरित छपे हैं। कुछ छात्रोपयोगी छोटी-छोटी जीवनियाँ भी छपीं। हमने महात्मा जी पर छपे सैकड़ों लेखों तथा इन जीवनियों को देखा व पढ़ा। पूज्य महात्मा जी के सैकड़ों लेखों व व्याख्यानों की खोज की, उन्हें पढ़ा, विचारा और सबका इस जीवन-चरित के लिखने में लाभ उठाया।

'तपोनिधि महात्मा हंसराज और उनका युग' महात्मा जी का पहला जीवन-चरित है जिसमें इतनी पत्र-पत्रिकाओं, लेखों, विज्ञप्तियों, ट्रैक्टों, रिपोर्टों व पुस्तकों के प्रमाण दिये गये हैं। इससे पूर्व छपे किसी भी जीवन-चरित में Documentation नहीं मिलेगी, ऐसा महात्मा जी के नाती श्री अमृत भूषण जी का कथन है। श्री अमृत भूषण जी का साहित्य-प्रकाशन का अपना बहुत अनुभव है। यह ठीक है कि बहुत सावधानी से प्रूफ देखने पर भी कहीं-कहीं छापे की कुछ अशुद्धियाँ मिलेंगी, परन्तु ये साधारण-सी हैं। सर फीरोजशाह मेहता राष्ट्रीय स्तर के पारसी नेता थे। हमने भी ऐसा ही लिखा है और सदा यही पढ़ाते व व्याख्यानों में कहते रहते हैं। श्री डॉ० भारतीय जी के पत्र से पता चला है कि उनके बारे कोई भूल छपी है। हमने ग्रंथ में लिखा है कि पं० आर्यमुनि जी छठे (मीमांसा) दर्शन का भाष्य नहीं कर पाए थे। श्री डॉ० भारतीय जी ने लिखा है कि मीमांसा का उनका भाष्य अधूरा रहा। यह हमें भी पता था, तभी तो पूज्य मीमांसक जी तथा आचार्य-प्रवर उदयवीर जी शास्त्री से हमने कहा कि पं० आर्य-मुनि तो मीमांसा दर्शन का भाष्य पूरा न कर पाय, आप तो जैसे-कैसे इसे पूरा करें। आचार्य उदयवीर जी से इस विषय पर हमारी घण्टों बात हुई। श्री डॉ० भारतीय जी का सुझाव हमें मान्य है कि हमें 'मीमांसा दर्शन का भाष्य अधूरा किया', ऐसा ही लिखना चाहिए था।

ऐसे ही ऋषि के पत्र-व्यवहार और विज्ञापन के प्रकाशन का श्रेय हमने प्रादेशिक सभा को दिया है। पं० भगवद्दत्त जी द्वारा सम्पादित 'ऋषि जी का पत्र-व्यवहार' प्रादेशिक सभा ने ही पहले छपवाया। डॉ० भारतीय जी का कथन है कि ये पं० भगवद्दत्त जी ने स्वयं छापे। हमारा निवेदन है कि हमने प्रादेशिक सभा की पुरानी Reports, साहित्य-प्रकाशन के विज्ञापनों और स्वयं पं० जी के लेखों व मित्रों की साक्षी से ही प्रादेशिक सभा को इसका श्रेय दिया है। अच्छा हुआ डॉ० भारतीय जी ने इसके स्पष्टीकरण का अवसर दिया है। इसपर हम फिर कभी विस्तार से लिखेंगे।

महात्मा जी के सम्बन्ध में फैलाई गई भ्रान्तियों का सप्रमाण निराकरण प्रथम बार इस ग्रंथ में हुआ है। लाला लाजपतराय जी के निर्वासन पर महात्मा जी व आर्यसमाज का लाला जी के प्रति क्या दृष्टिकोण था—इस सम्बन्ध में प्रथम बार इतनी प्रामाणिक खोज पाठकों के सामने आई है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आर्यसमाज के सेवा-कार्यों, संघर्षों, धर्म-प्रचार, शिक्षा-आन्दोलन, शुद्धि तथा सुधार-कार्यों पर पाठकों तथा गवेषकों को पर्याप्त नई सामग्री उपलब्ध करवाई गई है। पंजाब प्रान्त में आर्यसमाज के दो दल कैसे हुए ? इसके पीछे किसका काला हाथ था ? इसके बारे में पाठकों को सर्वथा नई जानकारी मिलेगी। आर्यसमाज तथा भारतीय जनजागरण के इतिहास पर प्रत्येक अध्याय में नूतन प्रकाश डाला गया है। प्रत्येक बात के लिए प्रमाणों की झड़ी लगाई गई है। ग़ैर-आर्यसमाजी पत्रकारों, नेताओं, धर्माचार्यों तथा राजनेताओं के मुख तथा लेखनी से महात्मा जी तथा आर्यसमाज के कार्यों की ऐसी भूरि-भूरि प्रशंसा आपने इससे पूर्व कम ही सुनी तथा पढ़ी होगी।

ग्रंथावली का दूसरा, तीसरा तथा चौथा भाग 'अमृत कलश' नाम से आप पढ़ेंगे। इनमें महात्मा जी के सम्पूर्ण साहित्य को देने का एक अभूतपूर्व प्रयास किया गया है। महात्मा जी के जीवन-दान के समय से लेकर उनके देह-त्याग के समय तक विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं से उनके लेखों व प्रवचनों की खोज करके उनका हिन्दी अनुवाद, उपयोगी महत्त्वपूर्ण टिप्पणियों के साथ ज्ञान-पिपासुओं की सेवा में प्रस्तुत किया गया है। इन तीन भागों में पाठकों को जहाँ आत्मिक भोजन प्राप्त होगा वहाँ वैदिक धर्म तथा दर्शन पर महात्मा जी के गम्भीर विचार पढ़ने को मिलेंगे।

महात्मा हंसराज ग्रंथावली के इन तीन भागों में पाठकों को इतिहास की पुष्कल नई सामग्री प्राप्त होगी। ऋषि दयानन्द जी महाराज के जीवन-सम्बन्धी नई जानकारी इन खण्डों में मिलेगी। आर्यसमाज के इतिहास की कई लुप्त परन्तु प्रेरणाप्रद घटनाओं का पता चलेगा। भारत में शिक्षा-प्रसार तथा पुनर्जागरण के इतिहास के कई पृष्ठों का अनावरण होगा। देश-जाति की ठण्डी रगों में गर्म रक्त का सञ्चार करनेवाले तपोनिधि हंसराज की ज्ञानप्रसूता लेखनी से लिखे इन लेखों के स्वाध्याय से सहृदय जन झूम उठेंगे।

अबतक महात्मा जी के लेखों व प्रवचनों की खोज के लिए 'आर्य गज़ट' उर्दू का ही सहारा लिया गया। हमने प्रथम बार आर्यसमाज के सब पत्रों की छानबीन करके महात्मा जी के विचारों तथा उद्गारों का संग्रह किया है। आर्यसमाज के बाहर के पत्र-पत्रिकाओं का भी लाभ उठाया है। क्या इस ऐतिहासिक उपलब्धि से आप वञ्चित रहेंगे ?

□

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

हमारे विशिष्ट प्रकाशन

म० आनन्द स्वामी कृत पुस्तकें

प्रभु दर्शन	१२.००
तत्त्वज्ञान	१५.००
प्रभुमिलन की राह	१५.००
घोर घने जंगल में	१५.००
मानव और मानवता	२०.००
उपनिषदों का सन्देश	१२.००
दो रास्ते	१२.००
यह धन किसका है ?	१२.००
बोध कथाएँ	१२.००
दुनिया में रहना किस तरह	७.००
मानव-जीवन-गाथा	५.५०
प्रभुभक्ति	५.००
महामन्त्र	५.००
एक ही रास्ता	५.००
भक्त और भगवान्	५.००
आनन्द गायत्री-कथा	४.००
सुखी गृहस्थ	३.५०
सत्यनारायणव्रत-कथा	३.००
शंकर और दयानन्द	४.००

श्री रणवीर लिखित

आनन्द स्वामी जीवनी (उर्दू)	१०.००

स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती कृत

महाभारतम् (तीन भागों में)	६००.००
वाल्मीकि रामायण	१००.००
चाणक्यनीति दर्पण	५०.००
प्रार्थना लोक	२५.००
प्रार्थना प्रकाश	४.००
प्रभात वन्दन	४.००
दिव्य दयानन्द	६.००
मर्यादा पुरुषोत्तम राम	१०.००
कुछ करो कुछ बनो	८.००

विद्यार्थियों की दिनचर्या	५.००
ब्रह्मचर्य गौरव	५.००
वैदिक विवाह पद्धति	४.००
आदर्श परिवार	८.००
ऋग्वेद सूक्ति-सुधा	२५.००
अथर्ववेद सूक्ति-सुधा	१५.००
यजुर्वेद-सूक्ति-सुधा	१२.००
सामवेद सूक्ति-सुधा	१२.००
ऋग्वेदशतकम्	४.००
यजुर्वेदशतकम्	४.००
अथर्ववेदशतकम्	४.००
सामवेदशतकम्	४.००
भक्ति संगीत शतकम्	३.००
चमत्कारी ओषधियाँ	६.००
घरेलू ओषधियाँ	६.००

प्रो० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार

वैदिक विचारधारा का वैज्ञानिक आधार	५०.००
सत्य की खोज	५०.००
ब्रह्मचर्य सन्देश	१५.००

पं० मदनमोहन विद्यासागर

संस्कार समुच्चय	४५.००
सत्यार्थ सरस्वती	२५.००
ईश्वर प्रत्यक्ष	६.००

डॉ० भवानीलाल भारतीय

श्रीकृष्ण चरित	२५.००
श्यामजी कृष्ण वर्मा	२४.००
आर्यसमाज विषयक साहित्य परिचय	२५.००

स्वामी वेदानन्द सरस्वती

ऋषि बोध कथा	६.००
ईशोपनिषद्	४.५०

डॉ० प्रशान्त वेदालंकार

धर्म का स्वरूप	३५.००

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली-६

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation Chennai

स्वामी विद्यानन्द सरस्वती

वेदमीमांसा ५०.००

पं० चन्द्रभानु सिद्धान्तभूषण

महाभारत सूक्तिसुधा ४०.००

ओम्प्रकाश त्यागी

वैदिक साहित्य का संक्षिप्त परिचय ६.००

विष्णुदयाल एम० ए०

महर्षि का सच्चा स्वरूप ४.००

प्रो० रामविचार एम० ए०

आर्यसमाज का कायाकल्प कैसे हो ४.००

पं० सत्यपाल विद्यालंकार

श्रीमद्भगवद्गीता ८.००

सुरेशचन्द्र वेदालंकार

महकते फूल ६.००

पं० नरेन्द्र

हैदराबाद के आर्यों की साधना व संघर्ष ६.००

मनोहर विद्यालंकार

सरस्वती वन्दना ५.००

कवि श्री कस्तूरचन्द

ओंकार एवं गायत्री शतकम् ३.००

पं० राजनाथ पाण्डेय

वेद का राष्ट्रगान १.००

रामसिंह आर्योपदेशक

ओ३म् की व्याख्या २.००

प्रो० नित्यानन्द वेदालंकार

भगवत भजन जरूरी है १.५०

पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय

मुक्ति से पुनरावृत्ति ३.००

पं० विश्वनाथ विद्यालंकार

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका सरल अध्ययन २.००

पं० सुखदेव वेदवाचस्पति

नमस्ते की व्याख्या १.५०

बालोपयोगी

त्रिलोकचन्द विशारद

महर्षि दयानन्द २.५०

स्वामी श्रद्धानन्द २.५०

गुरु विरजानन्द २.५०

पं० लेखराम २.५०

स्वामी दर्शनानन्द २.५०

पं० गुरुदत्त २.५०

स्वामी दर्शनानन्द

बालशिक्षा-धर्मशिक्षा १.००

हरिश्चन्द्र विद्यालंकार

वैदिक शिष्टाचार २.००

पं० सत्यभूषण वेदालंकार एम ०ए०

नैतिक शिक्षा प्रथम भाग ०.७५

नैतिक शिक्षा द्वितीय भाग ०.७५

नैतिक शिक्षा तृतीय भाग १.५०

नैतिक शिक्षा चतुर्थ भाग १.५०

नैतिक शिक्षा पंचम भाग २.००

नैतिक शिक्षा षष्ठ भाग २.००

नैतिक शिक्षा सप्तम भाग २.५०

नैतिक शिक्षा अष्टम भाग २.५०

नैतिक शिक्षा नवम भाग ३.००

नैतिक शिक्षा दशम भाग ३.००

कर्मकाण्ड की पुस्तकें

वैदिक सन्ध्या ०.५०

आर्यसत्संग गुटका १.५०

पंचयज्ञ प्रकाशिका ४.००

चित्र - चित्र - चित्र

महर्षि दयानन्द रंगीन २०×३० ३.००

महर्षि दयानन्द एक रंग १८×२२ २.००

गुरु विरजानन्द एक रंग १८×२२ २.००

स्वामी श्रद्धानन्द ,, ,, २.००

स्वामी दर्शनानन्द ,, ,, २.००

पं० हंसराज ,, ,, २.००

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली-६

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पं० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार

वैदिक विचारधारा का वैज्ञानिक आधार	५०.००
सत्य की खोज	५०.००
ब्रह्मचर्य सन्देश	१५.००
वैदिक संस्कृति के मूल तत्त्व	४०.००
From Old Age to Youth	78.00
एकादशोपनिषद्	७५.००
उपनिषद् प्रकाश	६५.००
संस्कार-चन्द्रिका	५०.००
बुढ़ापे से जवानी की ओर	४०.००
होमियोपैथिक के मूल सिद्धान्त	३०.००
होमियोपैथिक औषधियाँ चित्रण	६०.००
रोग उनकी होमियो० चिकित्सा	७५.००
श्रीमद् भगवद् गीता	५०.००

पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय-साहित्य

आस्तिकवाद	१५.००
इस्लाम के दीपक	१२.००
मीमांसा प्रदीप	१०.००
आर्यसमाज	८.००
वैदिक धर्म और समाज	६.००
वैदिक मान्यतायें	६.००
इस्लाम और आर्यसमाज	६.००
हम क्या खायें ? घास या मांस	६.००
कर्मफल सिद्धान्त	४.००
वेद प्रवचन	२०.००
भारतीय पतन और उत्थान	५.००
शेक्सपियर के नाटक (सम्पूर्ण ३७ नाटक) तीन भाग	१५.००

पं० उदयवीर शास्त्री

सांख्य दर्शन का इतिहास	५०.००
वेदान्त दर्शन का इतिहास	४०.००
ब्रह्मसूत्र (वेदान्त)	८०.००
सांख्य सिद्धान्त	४०.००
सांख्य दर्शन	२५.००
वैशेषिक दर्शन	४०.००
न्याय दर्शन	४०.००
योग दर्शन	४०.००

पं० सत्यकेतु विद्यालंकार कृत

आर्यसमाज का इतिहास (भाग १)	१००.००
,, ,, (भाग २)	११०.००
,, ,, (भाग ३)	१००.००
,, ,, (भाग ४)	१००.००
प्राचीन भारतीय इतिहास का वैदिक युग	२८.००
दक्षिण पूर्वी और दक्षिणी एशिया में भारतीय संस्कृति	२३.००
म० एशिया व चीन में भारतीय ,,	२०.००
प्राचीन भारत	२८.००
भारतीय संस्कृति का विकास	२४.००
प्राचीन भारत का धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक जीवन	२४.००
एशिया का आधुनिक इतिहास	४४.००
प्रमुख राज्यों के संविधान	२४.००
समाज शास्त्र	३०.००
चाणक्य	२२.००
पतन और उत्थान	२६.००
सविता देवता भगवद्दत्त	३५.००
वृहस्पति देवता भगवद्दत्त	४०.००

स्वामी योगेश्वरानन्द सरस्वती कृत

आत्म विज्ञान	हिन्दी	४०.००
	अंग्रेजी	३५.००
बहिरंग योग	हिन्दी	४५.००
	अंग्रेजी	३५.००
ब्रह्म विज्ञान	हिन्दी	७५.००
	अंग्रेजी	३५.००
निर्गुण ब्रह्म	हिन्दी	२५.००
दिव्य ज्योति	हिन्दी	४०.००
प्राण विज्ञान	हिन्दी	२५.००
	अंग्रेजी	३०.००
दिव्य शब्द विज्ञान	हिन्दी	४०.००
व्याख्यान माला (तीन भाग)	हिन्दी	८५.००

गोविन्दराम हासानन्द नई सड़क दिल्ली-६

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

चन्द्रगुप्त के महामन्त्री चाणक्य प्रणीत

चाणक्यनीतिदर्पणः

भारतीय और पाश्चात्य सभी विद्वान् चाणक्यजी की कूटनीति का लोहा मानते हैं।

चाणक्य नीति पर हिन्दी, गुजराती, बंगला, अंग्रेजी आदि भाषाओं में सैकड़ों टीकाएँ लिखी गई हैं परन्तु वे केवल संक्षिप्त भावार्थ मात्र हैं

इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ का अब तक कोई विस्तृत भाष्य नहीं लिखा गया था।

आर्यजगत् के सुप्रसिद्ध विद्वान्

स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

ने इस पर भाष्य लिखकर इस कमी को पूरा कर दिया है।

आचार्य उदयवीरजी शास्त्री ने पुस्तक की पाण्डुलिपि का अवलोकन कर इस ग्रन्थरत्न की भूरि-भूरि प्रशंसा की है।

लगभग ३०० पृष्ठ के ग्रन्थ का मूल्य केवल ५०.००

श्रीमद्वाल्मीकि रामायण

आर्य जगत् के सुप्रसिद्ध विद्वान्, निरन्तर साहित्य-साधना में संलग्न, रामायण के समालोचक एवं मर्मज्ञ

लेखक—स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

- ☐ यदि आप अपने प्राचीन गौरवमय इतिहास की झाँकी देखना चाहते हैं,
- ☐ यदि आप मर्यादा पुरुषोत्तम राम के जीवन का अध्ययन करना चाहते है,
- ☐ यदि आप प्राचीन राज्य-व्यवस्था का स्वरूप देखना चाहते हैं,
- ☐ यदि आप रामायण के सम्बन्ध में प्रचलित भ्रान्त धारणाओं का समाधान पाना चाहते हैं,
- ☐ यदि आप भ्रातृ-प्रेम, नारी-गौरव, आदर्श सेवक, आदर्श मित्र, आदर्श राज्य, आदर्श पुत्र के स्वरूपों का अवलोकन करना चाहते हैं,
- ☐ यदि आप रामायण का तुलनात्मक अध्ययन करना चाहते हैं,

तो यह रामायण पढ़ जाइए। सैकड़ों टिप्पणियों से समलंकृतसम्पूर्ण रामायण ६००० श्लोकों में समाप्त।

मूल्य रु० १००,००

गोविन्दराम हासानन्द, दिल्ली-६

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वेद-मीमांसा

स्वामी विद्यानन्द सरस्वती

पाश्चात्य विद्वानों ने वेद के विकृत रूप को प्रचारित करने का षड्यन्त्र किया। तरह-तरह की भ्रान्तियां हमारे भारतीय विद्वानों ने भी प्रसारित कीं। आर्यसमाज की ओर से युक्तियुक्त उत्तर समय-समय पर दिये जाते रहे।

सभी प्रकार की भ्रान्त धारणाओं को दूर कर वेद के यथार्थ स्वरूप से अवगत कराने के उद्देश्य से ही इस **वेद-मीमांसा** की रचना विद्वान् लेखक ने सूत्र की शैली में करके उसका भाष्य किया है। **मूल्य ५०.००**

पुस्तक पर महत्वपूर्ण सम्मति—

वेद-मीमांसा का वैशिष्ट्य शब्दों द्वारा दर्शा सकना सम्भव नहीं है। उसके आद्योपान्त मनन द्वारा ही उसका महत्व जाना जा सकता है। ग्रन्थकार के व्यापी अनुसन्धान और गम्भीर वैदुष्य की छाप प्रत्येक विषय के प्रतिपादन में पाई जाती है।

—वेदभाष्यकार प्रो० विश्वनाथ विद्यामार्त्तण्ड

जब प्रकृति की अनमोल दवाइयाँ आपको आसानी से उपलब्ध हैं तो—गोली, पुड़िया, कैप्सूल या इन्जेक्शन की क्या जरूरत है ?

घर का वैद्य

लेखक—सुनील शर्मा

१.	घर का वैद्य आंवला	३.५०	११.	घर का वैद्य दूध-घी	३.५०
२.	घर का वैद्य नीम	३.५०	१२.	घर का वैद्य दही-मट्ठा	३.५०
३.	घर का वैद्य गन्ना	३.५०	१३.	घर का वैद्य नमक	३.५०
४.	घर का वैद्य प्याज	३.५०	१४.	घर का वैद्य हल्दी	३.५०
५.	घर का वैद्य लहसुन	३.५०	१५.	घर का वैद्य हींग	३.५०
६.	घर का वैद्य नीबू	३.५०	१६.	घर का वैद्य बेल	३.५०
७.	घर का वैद्य तुलसी	३.५०	१७.	घर का वैद्य बरगद	३.५०
८.	घर का वैद्य पीपल	३.५०	१८.	घर का वैद्य मूली	३.५०
९.	घर का वैद्य आक	३.५०	१९.	घर का वैद्य गाजर	३.५०
१०.	घर का वैद्य सिरस	३.५०	२०.	घर का वैद्य अदरक	३.५०

बीसों पुस्तकें चार सुन्दर जिल्दों में १४०.००

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली-११०००६

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

हमारे विशिष्ट संग्रहणीय प्रकाशन

आलोचना

प्रो० नित्यानन्द पटेल

प्रेमचन्द के उपन्यास साहित्य में सांस्कृतिक चेतना 125.00
छायावाद : नया मूल्यांकन 35.00
पूर्व और पश्चिम 35.00

उपन्यास तथा कथा साहित्य

शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय

अपने पराये 12.00
अकेली 12.00
चन्द्रनाथ 12.00
अनुराधा 12 00
परिणीता 12.00
बैकुंठ का दानपत्र 12.00
बड़ी दीदी 12.00
देवदास 15.00
विराज बहू 12.00
बिन्दु का बेटा 12.00
ब्राह्मण की बेटी 12.00
पण्डित मोशाय 12.00
देहाती समाज 15.00
मझली दीदी 12.00

सुनील शर्मा

हितोपदेश 25.00

वि० अनन्त

माँ 30.00
आज की सावित्री 30.00
दुल्हन 30.00
देवता 30.00
मुझे जीने दो 30.00
कसम 30.00

तकनीकी

हयात

सुबोध रेडियो ट्रांजिस्टर मैकेनिक 25.00
सुबोध ट्रांजिस्टर सर्विसिंग 20.00
सुबोध ट्रांजिस्टर गाइड 25.00

घर गृहस्थी

डा० लक्ष्मीनारायण शर्मा

गर्भ स्थिति, प्रसव और शिशुपालन 25.00

सुशीला कपूर

आधुनिक सिलाई-कटाई 25.00

मीनाक्षी धींगड़ा

पाक कला (पॉकेट साइज) 6.00
मिष्ठान्न कला (पॉकेट साइज) 6.00
अचार मुरब्बे चटनी (पॉकेट साइज) 6.00
शर्वत आइस्क्रीम स्ववेश (,,) 6.00

स्वास्थ्य

डा० लक्ष्मीनारायण शर्मा

हृदय रोग : कारण निवारण 20.00

डा० टी० बी० एल० जायसवाल

कैंसर : कारण और निवारण 20.00

वैद्य सुरेश चतुर्वेदी

आहार चिकित्सा 25.00

डॉ० समरसेन

योगासन से इलाज 20.00

डॉ० प्रकाश भारती

घर का डॉक्टर (होम्योपैथी) 25.00

विविध

डॉ० द्वारकाप्रसाद

योग का वरदान 25.00

अरुण अर्णव

सचित्र एशियाई खेल 25.00
(9वें एशियाई खेलों तक)

राजीव वत्स

जूडो फॉर ऑल 15.00
जूडो आत्मरक्षा के लिए 10.00

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

गीताञ्जलि 25.00

विकल

कृष्णवाणी 20.00

सुबोध पब्लिकेशन्स

2/3, अंसारी रोड, नई दिल्ली-110002

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitized by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

महामुनि कृष्णद्वैपायन व्यासजी प्रणीत

महाभारतम्

महाभारत धर्म का विश्वकोश है। व्यासजी महाराज की घोषणा है कि जो कुछ यहाँ है, वही अन्यत्र है, जो यहाँ नहीं है वह कहीं नहीं है। इसकी महत्ता और गुरुता के कारण इसे पञ्चम वेद कहा जाता है।

वेद को छोड़कर सभी वैदिक ग्रन्थों में प्रक्षेप हुए हैं। महाभारत भी इस प्रक्षेप से बच नहीं सका। महाभारत की श्लोक संख्या बढ़कर एक लाख पहुँच गई है। इसमें असम्भव गप्पों, अश्लील कथाओं, विचित्र उत्पत्तियों अप्रासाङ्गिक कथाओं को ठूंसा गया। इतने बड़े ग्रन्थ को पढ़ना कठिन हो गया।

आर्यजगत् के ही नहीं भारत के प्रसिद्ध विद्वान्

स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

द्वारा तैयार एक विशिष्ट संस्करण।

इस ग्रन्थ में असम्भव, अश्लील और अप्रासांगिक कथाओं को निकाल दिया गया है। लगभग १६,००० श्लोकों में सम्पूर्ण महाभारत पूर्ण हुआ है। श्लोकों का तार-तम्य इस प्रकार मिलाया गया है कि कथा का सम्बन्ध निरन्तर बना रहता है।

☐ यदि आप अपने प्राचीन गौरवमय इतिहास की, संस्कृति और सभ्यता की, ज्ञान-विज्ञान की, आचार-व्यवहार की गौरवमयी झाँकी देखना चाहते हैं,

☐ यदि योगिराज कृष्ण की नीतिमत्ता देखना चाहते हैं,

☐ यदि प्राचीन समय की राज्य-व्यवस्था की झलक देखना चाहते हैं,

☐ यदि आप जानना चाहते हैं कि क्या कौरवों का जन्म घड़ों में से हुआ था? क्या द्रौपदी का चीर खींचा गया था, क्या एकलव्य का अंगूठा काटा गया था, क्या युद्ध के समय अभिमन्यु की अवस्था सोलह वर्ष की थी, क्या कर्ण सूतपुत्र था, क्या जयद्रथ को धोखे से मारा गया आदि

☐ यदि आप भ्रातृप्रेम, नारी का आदर्श, सदाचार, धर्म का स्वरूप, गृहस्थ का आदर्श, मोक्ष का स्वरूप, वर्ण और आश्रमों के धर्म, प्राचीन राज्य का स्वरूप आदि के सम्बन्ध में जानना चाहते हैं, तो एक बार इस ग्रन्थ को पढ़ जाइए।

विस्तृत भूमिका, विषय-सूची, श्लोक-सूची आदि से युक्त इस महान् ग्रन्थ का मूल्य है केवल ६००) रुपये। तीन भाग।

गोविन्दराम हासानन्द, दिल्ली-६

प्रकाशक-मुद्रक विजयकुमार ने सम्पादित कर अजय प्रिंटर्स, दिल्ली-३२ में मुद्रित करा वेदप्रकाश कार्यालय, ४७०८ गली नं० ६, दिल्ली से प्रसारित किया।
Dr. Vivek Arya Vedic Library